अनाचार से कैसे निपटें ?

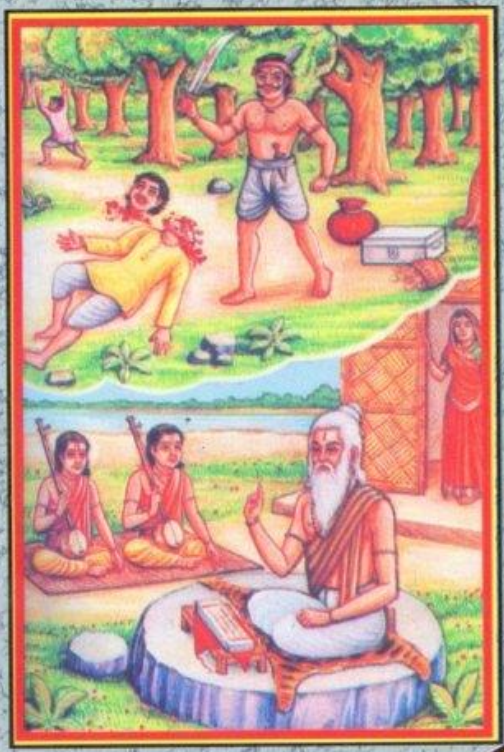

-श्रीराम शर्मा आचार्य

अनाचार से कैसे निपटें ?

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१०

मूल्य : ९.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

अवांछनीयता की जड़ कैसे कटे !

विकासवादी डार्विन के अनुसार मनुष्य क्षुद्र योनियों में होते हुए बंदर से मनुष्य बना है। धार्मिक मान्यताओं के हिसाब से वह चौरासी लाख निम्नस्तरीय योनियों में भ्रमण करते हुए मानवी काया के चरम शिखर तक पहुँचा है। जन्म मिल जाने पर भी पूर्व संचित कुसंस्कारों से पूरी तरह छुटकारा नहीं मिलता, पशु-प्रवृत्तियों के बीजांकुर जड़ जमाए बैठे रहते हैं और अनुकूल अवसर मिलते ही उनकी पूर्व परंपरा उभर पड़ती है। यदि सुधार अनुशासन, प्रशिक्षण का विशिष्ट प्रयत्न न किया जाए, तो अनगढ़ मनुष्य भी स्वेच्छाचारिता अपना लेता है और उस प्रकार का दृष्टिकोण, क्रिया-कलाप अपना लेता है जैसा कि पशुओं के आचरण में देखा जाता है।

भगवान की इसे मनुष्य पर विशेष भूमिका अनुकंपा ही समझना चाहिए कि उसे उच्चस्तरीय संरचना वाला शरीर और मस्तिष्क मिला है। इन्हीं के आधार पर वह ऐसे प्रयास कर सका और उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच सका, जो अन्य शरीरधारियों में बलिष्ठ समझे जाने वालों के लिए भी संभव नहीं हैं। इतने पर भी कुछ काम मनुष्य को स्वयं भी करने पड़ते हैं, जिनके आधार पर उसका आचरण सभ्य और मानस सुसंस्कृत बन सके। इसे शिक्षा या विद्या कहते हैं। यह मानवी प्रयास है इसका दार्शनिक ढाँचा और आचार व्यवहार तो पूर्ववर्ती देव मानव बना गए हैं, पर उसे गहराई से समझना, स्वभाव-अभ्यास में उतारना और व्यवहार में चरितार्थ करने की विधि-व्यवस्था मनुष्य को वैयक्तिक या सामूहिक रूप से स्वयं ही बनानी पड़ती है। यदि वह न बन पड़े, तो जन सामान्य की स्थिति वही बनी रहेगी जो नर-वानरों या वन मानुषों की होती है। वे कुछ भी सोचते, कुछ भी करते और कुछ भी रीति-नीति अपना सकते हैं। अनगढ़ता

यदि उद्दंड हो उठे, तो वह नृशंसता का रूप धारण कर लेती है। नर-पिशाच कहे जाने वालों के क्रिया-कृत्य ऐसे ही होते हैं।

माली अपने उद्यान में पेड़-पौधों को काटता-छाँटता रहता है, उनकी कलमें बनाता और लगाता रहता है, यथा समय खाद-पानी देता और पशु-पक्षियों से उसकी रखवाली करता है, तभी वह स्थिति बन पड़ती है, जिसमें उद्यान हरा-भरा, फला-फूला, नयनाभिराम दीख पड़े और श्रम की सार्थकता बढ़े-चढ़े लाभ के रूप में प्रस्तुत करे। ऐसा सुयोग न बन पड़ने पर वही पौधे जंगली बन जाते हैं, कुरूप दीखते हैं और लाभ देने के स्थान पर मार्ग में अवरोध बनकर अड़ते हैं, ढेरों जमीन घेर लेते और अपने नीचे साँप-बिच्छू जैसे जीव-जंतु पालते रहते हैं, काँटे बिखेरते और उधर से गुजरने वालों की राह रोकते हैं। सुसंस्कृत उद्यान और अनगढ़ झाड़-झंखाड़ों के बीच जो अंतर होता है, वही उन लोगों के बीच पाया जाता है, जो पशु-प्रवृत्तियों का आवरण अपने ऊपर से नहीं हटा सके और मानवोचित आचार संहिता के ढाँचे में अपने को नहीं ढाल सके।

मनुष्य भी बंदरों की तरह अनुकरण प्रिय प्राणी है। बंदर दूसरों की तरह नकल करते देखे जाते हैं। तोते भी सुनी बोली को दुहराने लगते हैं। मनुष्य का अपना मौलिक चिंतन, विवेक और दृष्टिकोण आदर्शवादी स्तर का प्रयत्नपूर्वक ही बनता है। हीरे को खराद पर घिसकर चमकीला बनाया जाता है। लोहा खदान से मिट्टी मिली हुई स्थिति में निकलता है। उसे भट्टी में गलाकर फौलाद बनाया जाता है। यही बात अन्य सभी धातुओं के संबंध में भी है। वे भी खदान से खोदते समय मिट्टी-पत्थर मिली होती हैं। अग्नि संस्कार के उपरांत ही वे अपने वास्तविक स्वरूप में स्वच्छ बनती है। मनुष्य के संबंध में भी यह बात पूरी तरह लागू होती हैं। जन्मजात सुसंस्कार लेकर तो कोई बिरले ही निकलते हैं। उसे सुसंस्कृत बनाने के काम अभिभावक, अध्यापक मिलकर करते हैं, साथ ही उसमें वातावरण भी सहायता करता है। दर्शनीय आभूषण

गढ़ने के लिए स्वर्णकार को कितना परिश्रम करना पड़ता है, कितने कौशल का परिचय देना पड़ता है, इसे सभी जानते हैं। श्रेष्ठता संपन्न व्यक्तित्व का निर्माण भी ऐसा ही कार्य है, जो अनायास ही नहीं हो जाता। उसके लिए संरक्षकों को असधारण प्रयत्न करना पड़ता है। यदि उनमें इस कौशल का अभाव है, तो फिर संचित कुसंस्कार ही पनपेंगे और चारों ओर फैला हुआ कुप्रचलनों का माहौल उसे बढ़ाने में और हवा देगा।

पानी का स्वभाव नीचे गिरना है। जन साधारण की मनोदशा भी पतनोन्मुख प्रयासों में बहती देखी जाती है। अधिकांश लोग वासना, तृष्णा और अहंता की कीचड़ में कंठ तक धँसे देखे जाते हैं। उन्हें लोभ, मोह और दर्प के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं, पेट प्रजनन से आगे बढ़कर और कुछ सोचने या करने का उनमें न तो विवेक होता है और न साहस। ऐसी दशा में जो इस प्रवाह में बहने लगते हैं, वे भी उन्हीं कृत्यों में लग जाते हैं, जिनमें आम लोग लगे देखे जाते हैं। वातावरण का प्रभाव इसी को कहते हैं।

कीचड़ में कमल उगना एक सुयोग है। आमतौर से तो उसमें गंदे कीड़े ही कुलबुलाते रहते हैं। जिन्होंने लोक प्रवाह में बहने के लिए आत्म समर्पण कर दिया, समझना चाहिए कि उनके लिए नर-पशु स्तर का जीवनयापन ही भाग्य विधान जैसा बन गया। वे खाते, सोते, पाप बटोरते और रोते-कलपते मौत के मुँह में चले जाते हैं। स्रष्टा ने मनुष्य जन्म का बहुमूल्य जीवन धरोहर के रूप में दिया था, होना यह चाहिए था कि इस सुयोग का लाभ उठाकर अपनी अपूर्णता पूर्णता में बदली गई होती और विश्व-मानव की सेवा-साधना में संलग्न रहकर देवमानव की भूमिका में प्रवेश करके धन्य बना जाता, असंख्यों को सन्मार्ग में चलाकर सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन का अजस्र पुण्य कमाया गया होता। यह तो बन नहीं पड़ता, उल्टे पाप का पिटारा सिर पर लादकर लंबे भविष्य को अंधकारमय बनाया जाता है।

जीवन का महत्त्व और सदुपयोग यदि आरंभ से ही समझा और समझाया जा सके, तो उन कुसंस्कारों के घटने और मिटने का अवसर मिलेगा, जो मनुष्य को बुरी तरह पशु-प्रवृत्तियों से आच्छादित किए रहते हैं, जिनके कारण संकीर्ण स्वार्थपरता के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं। वासना और तृष्णा की पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ इच्छा और आकांक्षा उठती नहीं।

जिस प्रकार छोटे बालकों की शरीर व्यवस्था पर अभिभावकों को अधिक ध्यान देना पड़ता है, उनके आहार-विहार, वस्त्र सफाई आदि के प्रबंध का समूचा उत्तरदायित्व स्वयं ही उठाना पड़ता है, उसी प्रकार यह भी उतना ही आवश्यक है कि उठती आयु से ही सुसंस्कारों का परिमार्जन आरंभ कर दिया जाए। अबोध अवस्था मानवी दायित्व समझने और अपनाने में समर्थ नहीं होती। बालकों को शिष्टाचार का कोई ज्ञान नहीं होता। नीति-मर्यादा भी वे नहीं समझते। उसी प्रकार उन्हें उन आचार-विचारों की भी कोई जानकारी नहीं होती, जो सभ्यता के क्षेत्र में प्रवेश करते ही जानने और मानने पड़ते हैं। इस स्वाभाविक अनजानेपन को घटाने और हटाने का भी उन्हें ही प्रयत्न करना चाहिए, जो उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करते हैं। बालकों को स्वयं इस बात की जानकारी नहीं होती, वह उन्हें ऊपर से उपलब्ध करानी पड़ती है। जैसे कोई बालक माता के पेट से सुशिक्षित उत्पन्न नहीं होता, समझ विकसित होने पर ही अभिभावक उसे बढ़ाने की व्यवस्था करते हैं। इसी प्रयास के साथ-साथ यह भी होना चाहिए कि उसे नागरिक कर्त्तव्य और सामाजिक दायित्व का क्रमशः बोध और अभ्यास कराया जाता रहे। इसके लिए उन्हें किसी अलग विद्यालय से भेजने की या अलग से अध्यापक लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह कार्य अभिभावक एवं परिवार के अन्य सदस्य ही मिल-जुलकर करते रह सकते हैं।

बच्चों की समझ कम होती है, पर वे अनुकरण करने की प्रवृत्ति साथ लेकर आते हैं। इसी आधार पर वे बोलना, खड़े होना,

चलना आदि सीखते हैं। इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, उनके सामने परिवार के सदस्य ऐसा व्यवहार करें, जिसका अनुकरण करते हुए उन्हें भी शालीनता संवर्धन का अभ्यास करना पड़े। इसके लिए आवश्यक है कि बच्चों को सुयोग्य व्यक्तियों के साथ रहने को अधिक अवसर मिले। आमतौर से गाड़ी में लिए फिरने और खिलौनों से खिलाने, झूला झुलाने आदि की आवश्यकता पूरी कर देने पर ही कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है, जबकि होना यह चाहिए कि सभ्यता का शिष्टाचार का पाठ भी छोटी आयु से ही पढ़ाना आरंभ किया जाए। प्रायः घर में कई बच्चे होते हैं। उन सबको साथ-साथ रहने, खेलने का अवसर देने पर यह शिक्षण सरल पड़ता है। जिन घरों में बच्चे एकाकी होते हैं, उन्हें समवयस्कों के साथ सहयोग की, सद्भाव की, रीति-नीति समझने में कमी ही रह जाती है। इसलिए जिन घरों में बच्चे अकेले हों, वहाँ यह प्रयत्न किया जाए। सामूहिकता के सहारे अनेक सद्गुण सीखे जा सकते हैं। एकाकीपन के कारण विकास रुक जाता है। जहाँ सरस्वती शिशु जैसे छोटे बालकों की पाठशालाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ तनिक बड़ा होते ही बच्चों को भेजने का प्रबंध करना चाहिए। छोटे बच्चे उतनी जल्दी पाठ्य-पुस्तकें तो नहीं पढ़ सकते, पर पारिवारिक शिष्टाचार, समूह में रहने की प्रवृत्ति और सामान्य ज्ञान से अपनी जानकारियाँ तो बढ़ाते ही हैं। यही है वह समय, जिसमें सुसंस्कारिता के बीजारोपण का प्रयत्न आरंभ कर देना चाहिए।

जैसे-जैसे बाल-विकास का क्रम आगे चले वैसे-वैसे उस प्रशिक्षण प्रयास को और तीव्र करना चाहिए। इसके लिए छोट-छोटी कहानियाँ सुनाना, छोटी-छोटी कविताएँ याद कराना अधिक सरल पड़ता है। इतना ही वे समझ सकते हैं और यही उनके अनुकूल भी पड़ता है। इसी आधार पर आगे चलकर समाज निष्ठा की मजबूत इमारत खड़ी होती है।

प्रकाश के अभाव का नाम ही अंधकार है। जहाँ शालीनता के शिक्षण का अभाव रहा, जहाँ नीतिमत्ता को स्वभाव का अंग बनाने में

कमी रही, समझना चाहिए कि वहीं दुष्टता-दुर्जनता पनपी। अनेक लोगों में अनेक प्रकार के दुर्गुण देखे जाते हैं। इन्हें पशु-प्रवृत्तियों का उद्दंड उभार ही समझना चाहिए। यह खरपतवार इसलिए उपजते हैं कि खेत के माली आरंभ से ही उन्हें उखाड़ने और खाली जमीन पर सुरभित पुष्पों के, सद्गुणों के आरोपण का प्रयत्न नहीं करते। यह उपेक्षा दूर हो सके, तो समयानुसार हर व्यक्ति सज्जनता से भरा-पूरा हो सकता है।

जब तक बच्चे घर में रहते-पलते हैं, तब तक अभिभावक और परिवारीजन ही उनको सामान्य-ज्ञान के साथ नीति-नियमों का अभ्यास कराते हैं। यह आरंभ स्वच्छता और व्यवस्था के दो प्रभावों तक सीमित रहता है, पर इनमें भी वे बीजांकुर भरे पड़े हैं, जो आगे चलकर अन्यान्य सद्गुणों की पृष्ठभूमि बन सकते हैं। स्वच्छता में सौंदर्यप्रियता की अभिरुचि सन्निहित है। इसमें अस्वच्छता का निषेध भी है। अस्वच्छता की परिस्थितियाँ ही मलीनता की द्योतक हैं। जो गंदगी को सहन करता है, उसे हटाने के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह आगे चलकर उसी कारण स्वभाव में अनेकों अवांछनीयताओं को भी पाल लेता है। इसी प्रकार वस्तुओं, कपड़ों, उपकरणों, पुस्तकों को जहाँ-तहाँ बिखेर देने की आदत आगे चलकर आलस्य-प्रमाद का स्वभाव पनपा देती है। ऐसे लोग समय का मूल्य नहीं समझते। किसी काम को योजनाबद्ध रूप से नहीं करते। उपभोग में संयम नहीं बरतते। बात-बात में अनुशासनहीनता का परिचय देते हैं। इन्हीं अस्त-व्यस्तताओं का आगे चलकर इस रूप में परिपाक होता है, जिन्हें असज्जनोचित, अमानवीय, असभ्य स्तर की कहा जा सकता है। यही है वह विष बीज जो अंकुरित होने और फलने-फूलने पर समाज को स्वार्थीजनों से भर देता है। स्वार्थपरता अपनी सीमा से बाहर जाकर उद्दंडता का रूप धारण कर लेती है और अनाचार पर उतारू होती है। अपराधी प्रवृत्तियाँ ऐसे ही लोगों में पनपती हैं और फिर वे अपनी छूत अन्यान्यों को लगाकर अपने जैसे अनेकों

उद्दंडों का निर्माण करते हैं। उनका गिरोह बनता है। प्रथम आक्रमण में प्रत्येक आक्रांता कुछ लाभ उठा लेता है, क्योंकि जिस पर हमला होने वाला है, उसे उसकी पूर्व जानकारी नहीं होती। एक प्रकार से बेखबर और असावधान रहता है। असावधान पर हमला प्रायः कारगर होता है। इसी लालच में उसके साथ दूसरे अनाचारी भी जुड़ जाते हैं और एक अच्छा-खासा गिरोह बन जाता है। यह प्रवृत्ति इसलिए और भी बढ़ती जाती है कि उसके प्रतिरोध का कोई संगठित प्रयत्न नहीं होता। दुर्जन हमला बोलने और अनुचित लाभ उठाने के लिए संगठित हो जाते हैं, पर सज्जन अपने आप में ही संतुष्ट रहते हैं। वे संगठन की और संघर्ष की आवश्यकता नहीं समझते। इसलिए भी अवांछनीय तत्त्वों को आक्रमण करने और सफल होने का अवसर मिलता है।

❐ ❐

अनाचार का विषवृक्ष उगते ही काटें

इन दिनों अनाचार-भ्रष्टाचार अपेक्षाकृत अधिक उभार और विस्तार पर है, इसका एक बड़ा कारण यह है कि अनाचारी अपना आतंक सहज जमा लेते हैं और पीड़ित पक्ष से कुछ करते-धरते नहीं बनता। इसका प्रतिफल यह होता है कि अनाचारियों को जो सफलता मिलती है, उससे उनकी हिम्मत और अधिक बढ़ जाती है। एक को देखकर दूसरे के मन में भी यही लालच उभरता है, इस प्रकार सिलसिला आगे बढ़ता जाता है और अनाचारियों का गिरोह जहाँ-तहाँ खुला खेलने लगता है।

दूसरी ओर सज्जन अपने को एकाकी एवं असहाय अनुभव करते हैं। प्रतिरोध की क्षमता अपने में पैदा नहीं कर पाते, ऐसी दशा में उन्हें दया-क्षमा जैसे सिद्धांतों की याद आ जाती है और उनका स्मरण करके किसी प्रकार चुप बैठे रहने की नीति अपनाते हैं। इसका परिणाम और भी भयंकर होता है, उन्हें कायर समझ लिया जाता है, डरपोक, बुजदिल कहकर उनकी खिल्ली उड़ाई जाती है, अवसर पाते ही उन पर फिर हमला किया जाता है। इस प्रकार बार-बार आक्रमण होने या आशंका रहने के कारण तथाकथित भले आदमी अपनी हिम्मत गँवा बैठते हैं, मन मसोस लेते हैं। संघर्ष की बात सोचना बंद कर देते हैं और परिस्थितियों के आगे सिर झुका लेते हैं। उनकी दुर्गति देखकर दूसरे भी डर जाते हैं और आक्रमणकारियों से किसी प्रकार जान बचाने के लिए उनकी हाँ में हाँ मिलाने, उनके समर्थन तक में उतारू हो जाते हैं कि आक्रांता न केवल उस पराजित को वरन् अन्यान्य दुर्बल दीखने वालों पर भी हावी होने लगते हैं। बहुसंख्यक सज्जन इसी प्रकार पिटते रहते हैं और मुट्ठी भर आतंकवादी सबके सिर पर सवार रहते हैं।

ऐसी स्थिति आ बनने पर तो एक ही उपाय है कि जिन्हें आघात सहना पड़ रहा है, वे किसी भी हालत में अपनी पराजय स्वीकार न करें। घुटने न टेकें और अनीति से समझौता न करें। आक्रमण का प्रत्याक्रमण संभव न हो, घूँसे का जवाब लाठी से देते न बन पड़ रहा तो भी इतना तो करना ही चाहिए कि आत्म समर्पण किसी भी हालत में न करें, कम से कम असहयोग तो जारी रखें ही। सीता, रावण के यहाँ कैद थी, अकेली थी, असहाय थी तो भी उन्होंने रावण के दबाव, प्रलोभन और आकर्षण को स्वीकार न किया। यह स्थिति तो कम से कम बनी ही रहनी चाहिए। अपने को भले ही घाटा पड़े, कष्ट उठाना पड़े, पर सच्चाई की आवाज तो ऊँची रहनी ही चाहिए। यदि विरोध में साथ देने वालों का संगठन बन सके तो उस गुट से बहुत काम चल जाता है। राम के साथी लक्ष्मण रहे, इस घनिष्ठता को देखकर अंगद, हनुमान, सुग्रीव जैसों के हौंसले बढ़े और वे भी उनके साथ हो गये। बाद में तो रीछ वानरों तक ने उनका साथ दिया—इस प्रकार न्याय पक्ष अकेला न रहा, उसने अपने आकर्षण से अनेकों सहयोगी जुटा लिए। कहते हैं कि सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है। वह अकेला भी अड़ा रहे तो सहयोग के अनेकानेक आधार बनते हैं। टिटहरी समुद्र से अंडे वापिस लेने के लिए जब प्राणपण से जुट गई और चोंच में बालू भरकर समुद्र पाटने के लिए कटिबद्ध हो गई तो उसका साहस देखकर अगस्त्य मुनि सहायता के लिए दौड़े और न्याय को विजय दिलाने के लिए वह सब कुछ कर गुजरे जो उनके लिए संभव था।

सत्य परायणों और न्यायनिष्ठों को समय-समय पर दूसरों की सहायता भी मिलती रही है, इतिहास इसका साक्षी है। यदि ऐसा न हुआ होता तो बहुसंख्यक कुकर्मियों ने इस संसार की समूची शालीनता का भक्षण कर लिया होता। सत्यनिष्ठ एकाकी होने के कारण सर्वत्र पराजित—पराभूत हो गए होते किंतु ऐसा हुआ नहीं। प्रहलाद-पथ के अनुयायी कष्ट सहकर भी अपनी विजय ध्वजा

फहराते हैं। ईसा मरकर भी मरे नहीं, सुकरात की काया नष्ट होने पर भी उनका यश, वर्चस्व और दर्शन अपेक्षाकृत और भी प्रखर हुआ, व्यापक बना। गोवर्धन पर्वत उठाए जाने का संकल्प आरंभ में असंभव लगता रहा होगा, पर समय ने सदुद्देश्य का साथ दिया और सत्संकल्प ने विजय दुंदुभी बजाई।

यह साहस उस पक्ष में जगना चाहिए, जिसे अनीतिपूर्ण आक्रमण सहना पड़ता है, वे झुकें नहीं तो सज्जनों की सहानुभूति और दैवी अनुकंपा उनका साथ देगी। यदि यह हस्तगत न हो सके तो अकेली अपनी अंतरात्मा ही इतनी बलिष्ठ है कि उसकी संकल्प शक्ति अंत तक अनाचार से टक्कर लेती रहती है। कुकर्मी अपनी मौत मरते हैं, उनके पाप ही उन्हें खा जाते हैं।

इतने पर भी एक काम जनसाधारण को करना होगा कि अनाचार के विषवृक्ष उगने न पाएँ। इसके लिए आग लगने पर कुँआ खोदने की नीति काम न देगी। यदि ऐसा संभव हुआ तो पुलिस, कचहरी, कानून और जेल की व्यवस्था रहते दुष्कर्मों का अंत हो गया होता। प्रताड़ना आवश्यक तो है, पर उनकी आवश्यकता तब पड़ती है, जब दुर्घटना घटित हो चुकी होती है। अपराधी को दंड मिल सकता है, पर पीड़ित को जो सहना पड़ा उसकी क्षति पूर्ति कैसे होगी ? उसके कारण जिस विक्षोभ का, प्रतिशोध का, आतंक का वातावरण पैदा हो चुका होगा, उसका परिमार्जन किस प्रकार होगा ? क्रिया अपनी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। अनाचारी को सफलता मिलने पर इस मार्ग को अन्य अनेकों उद्दंड अपना लेते हैं। दुर्बलों में से अनेकों उस आशंका से भयभीत हो जाते हैं, यह ऐसी प्रतिक्रिया है, जिससे दुर्घटनाएँ होकर समाप्त नहीं हो जातीं वरन् वे अपने अवांछनीय प्रभाव से अनेकों को प्रभावित करती हैं और समाज का संतुलन बिगड़ता है, चिंतन का प्रवाह खड़ी दिशा में बहते रहना कठिन पड़ता है।

उपयुक्त यही है कि रोग उभरने की स्थिति उत्पन्न होने से पहले स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का कड़ाई से परिपालन करते हुए

वह अवसर ही न आने दिया जाए, जिसमें बीमारी का कष्ट सहना पड़े और चिकित्सकों का दरवाजा खटखटाना पड़े। चोरी होने से पहले यदि चौकीदारी की व्यवस्था ठीक कर ली जाए तो उस क्षति से बचा जा सकता है, जो चोरी के कारण होती है।

दुष्टता को दुर्बुद्धि उपजने और अनर्थ करने की स्थिति तक पहुँचने से पूर्व किया यह जाना चाहिए कि जहाँ से यह उपजते हैं, उन पशु-प्रवृत्तियों के संचित कुसंस्कारों का समय पर सुधार परिमार्जन कर लिया जाए अन्यथा वे धीरे-धीरे बढ़ते-परिपक्व होते और अभ्यास में उतरकर इस स्थिति तक पहुँचते हैं कि कुकर्मों की उद्दंडता अपनाने लगें। समय रहते चेतना ही उचित है। रोग की जड़ गहरी पहुँच जाने पर फिर उसकी जड़ उखाड़ना बहुत ही कठिन पड़ता है।

अभिभावक और अध्यापक इस दिशा में बहुत काम कर सकते हैं, वे बचपन से ही नई पीढ़ी को ऐसे संस्कार दे सकते हैं, जिनसे कुकर्मों के दुष्परिणामों और सत्कर्मों के सत्परिणामों को जान सकना संभव हो सके। इसके लिए परिवार का और पाठशाला का वातावरण ऐसा बनाना चाहिए, जिससे संपर्क में आने पर नवोदित बालक मानवी गरिमा और महत्ता के प्रति आकर्षित हो सके। अपने को हर दृष्टि से समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयत्नरत हो सकें। उन्हें इस बात का ज्ञान हो कि स्वेच्छाचार-अनाचार बरतने पर मनुष्य किस प्रकार हर किसी की दृष्टि में गिर जाता है और गया-गुजरा—अनगढ़ समझा जाने वाला किस प्रकार पग-पग पर तिरस्कार उपहास और विरोध का भाजन बनता है।

किशोरावस्था भले-बुरे व्यक्तित्व का निर्माण करने की दृष्टि अतिशय महत्त्वपूर्ण है, उसमें जोश उफनता रहता है किंतु बौद्धिक परिपक्वता का अभाव रहने से भटकाव की भारी गुंजाइश रहती है। इस आयु में एक नए वर्ग में पाला पड़ता है, वह है—साथी-संगियों का। स्कूलों में समवयस्क लड़कों का साथ होता है, उनका सान्निध्य रहने, पढ़ने, खेलने, सीखने में संपर्क सघन होने

के कारण परिचय कुछ ही समय में घनिष्ठता में परिणत होने लगता है। यह स्कूल की परिधि से बाहर भी चलता है और बचे हुए समय में एक-दूसरे के घर आने-जाने से लेकर, जहाँ-तहाँ घूमने जाने तक के प्रोग्राम बनने लगते हैं। इसी अवधि में गुण-दोषों का भी आदान-प्रदान चल पड़ता है, प्रतिभावान् अल्प-प्रतिभावानों पर हावी होते हैं, उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं, साथ ही अपने स्वभाव-व्यक्तित्व की छाप भी एक-दूसरे पर छोड़ते हैं, यह छाप भली भी हो सकती है और बुरी भी। इस बीच कहीं अवांछनीयता नहीं पनप रही है—इस बात पर अभिभावकों और अध्यापकों को समान रूप से ध्यान रखना चाहिए।

इन दिनों सुसंस्कारी वातावरण में पले सुसंस्कृत स्तर के बच्चे कम ही पाए जाते हैं, क्योंकि आम लोगों पर अनुपयुक्तता ही सवार रहती है। उनके स्वभाव-आचरण गए-गुजरे स्तर के होते हैं, भले ही वे शिक्षा, व्यवसाय, पद, वैभव आदि की दृष्टि से बढ़े-चढ़े ही क्यों न हों। उत्कृष्टता का वातावरण जहाँ नहीं है, वहाँ निकृष्टता का बोलबाला होना ही चाहिए। यह अनुपयुक्तता बड़ों में परिपक्व होकर बालकों को विरासत में मिलती है, ऐसे परिवारों के किशोर भी उन बुराइयों से घिरे होते हैं, जो उनके बड़ों में पनपती रही हैं। स्वभाव अपने जैसों को सहज ढूँढ़ और घसीट लेता है, जिनमें बुरी आदतें नहीं हैं, उन्हें भी अपनी प्रतिभा के बल पर अपने जैसा बना लेता है। अनुपयुक्तता से ग्रसित अपने सहयोगी बनाने-बढ़ाने के लिए विशेष रूप से लालायित रहते हैं, इस चपेट में भोले लड़के आ जाते हैं और उस घनिष्ठता का प्रसाद-परिणाम दुष्प्रवृत्तियों के रूप में प्राप्त करते हैं। नशेबाजी, गुंडागर्दी, घर में पैसे की चोरी, आवारागर्दी, गंदी कामुक हरकतें, दादागीरी जैसी अनेक बुराइयाँ उनमें जड़ जमा लेती हैं जो आरंभ में अच्छे परिवार में पले होने के कारण इस प्रकार की बदफैली से कोसों दूर थे। कुसंग उन्हें कुछ से कुछ बनाता है। किशोरों में इस प्रकार की अनुपयुक्तता सहज जड़ जमाती है, घर वाले इस

संदर्भ में अनजान रहते हैं, कारोबार की व्यवस्था में लगे रहते हैं, साथ ही यह भी सोचते हैं कि लड़का बड़ा हो गया। उसमें समझदारी, जिम्मेदारी आ गई होगी और अपना भला-बुरा भविष्य स्वयं देखने-समझने लगा होगा, पर देखा यह गया है कि बहुत करके इन्हीं दिनों पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं। तेजी से स्वभाव में प्रवेश करती हैं, व्यक्तित्व को अनुपयुक्त ढाँचे में ढाल देती हैं। पता तब चलता है जब बच्चों को लंबा समय दुष्प्रवृत्तियों के चंगुल में फँसे हुए निकल जाता है, बच्चे छिपते रहते और बड़े उन पर विश्वास करके खोजबीन का प्रयत्न नहीं करते हैं। बड़ी आयु वालों में सोच-समझ अधिक होती है और उत्साह कम, इसलिए वे अवांछनीयता की दिशा में तेजी से कदम नहीं बढ़ाते किंतु किशोर का उत्साह और भाव संवेदना चरम सीमा पर होता है। वे उत्कर्ष के झंझट भरे मार्ग पर चलने की अपेक्षा सस्ती और मनोरंजन करने वाली, गर्व फुलाने वाली अवांछनीयता की ओर तेजी से आकर्षित होते और देखते-देखते उसके चंगुल में फँसे जाते हैं। यही है वह काला केंद्रबिंदु जो अच्छे-भले बालकों को कुमार्गगामी बना देता है, वे पढ़ने-लिखने में मन लगाने की अपेक्षा कौतूक-कौतूहलों में अधिक ध्यान में केंद्रित करने लगते हैं और उन्हीं के आदी बन जाते हैं।

विश्वव्यापी अपराध वृद्धि के सर्वेक्षण से पता चलता है कि उद्दंडता की नींव किशोरावस्था में पड़ती है। उस अवधि में वह चुपके-चुपके बढ़ती और पकती रहती है, उन दिनों हरकतें छोटी होती हैं। बालकों द्वारा की गई होने के कारण उनकी दर-गुजर भी कर दी जाती है, पर जैसे ही वे प्रौढ़ होते हैं, वह पलती हुई विषाक्तता भयंकर कुकृत्यों के रूप में फूट पड़ती है और सारे समाज को ग्रस्त-आतंकित करती हैं। अच्छा होता इस विभीषिका की रोकथाम का उपाय-उपचार किशोरावस्था पर कड़ी नजर रखने के साथ ही किया जाता।

❑ ❑

दुष्प्रवृत्तियाँ इस प्रकार पनपती हैं

कुसंग की हानि और सत्संग की सुसंभावना सर्वविदित है। यों हर व्यक्ति इन दिनों व्यस्त है, समस्याओं और आवश्यकताओं के अत्यधिक बढ़ जाने से निजी कामों को निपटाना ही कठिन पड़ता है। इसलिए समझदार व्यक्तियों को प्रायः खाली नहीं पाया जाता, वे ठाली नहीं रहते—ऐसी दशा में उनके साथ अधिक समय गुजारने की संभावना नहीं रहती। जिसके पास ठाली समय है, जो कभी भी गपशप के लिए उपलब्ध हो सकता है—समझना चाहिए कि यह जीवन विद्या के संबंध में अनजाने हैं। ऐसे लोगों में सद्गुण भी नहीं पाए जाते, फिर उनकी संगति से लाभ क्या ? जिनके संपर्क से लाभ है वे इस स्थिति में नहीं रहते कि अपने योजनाबद्ध कामों को छोड़कर जिस-तिस के साथ गपशप लड़ाते रहें, ज्ञान या अज्ञान की बात कहने में अपना बहुमूल्य समय गँवाते रहें, इस कठिनाई के बीच यह सुयोग मिलना कठिन है कि सत्संग का सुयोग सरलतापूर्वक पाया जा सके। साथी-सहचर ढूँढ़ते-फिरने वालों को प्रायः आवारा लोगों की ही संगति हाथ लगती है। उससे लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होती है। किसी के व्यक्तित्व को गिराने में, उसे दुर्गुणी बनाने में अवसर ठाली लोगों की संगति ही सबसे अधिक विपत्ति ढाती और अनर्थ करती देखी गई है।

कहा गया है कि खाली दिमाग शैतान की दुकान होती है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि ठाली-बैठे पाए जाने वाले व्यक्ति गए-गुजरे स्तर के होते हैं। वे अपना सूनापन काटने के लिए किसी को भी साथी बनाने की फिराक में रहते हैं। आरंभ में मीठी बातें कहकर, सब्ज-बाग दिखाकर, कुछ प्रलोभन देकर आकर्षित करते हैं, जब शिकंजा कस जाता है तो उसे कुमार्ग पर धकेलने में अपनी चतुरता का परिचय देते हैं, ऐसी दशा में

मंडलियाँ प्रायः कुकर्मों की ही योजनाएँ बनाती और अवसर पाते ही उसे कार्यान्वित करती देखी जाती हैं। पतन का सामान्य उपक्रम यहीं से आरंभ होता है।

यों पूर्व जन्मों की संचित पशु-प्रवृत्तियाँ और वातावरण का प्रभाव भी गिरने-गिराने में ही सहायता करते हैं। पानी का स्वभाव ढलान की ओर बहने का होता है। छोड़ी गई चीज नीचे की दिशा में ही गिरती है, उठने-उठाने के लिए तो विशेष योजना बनाने और विशेष साधन जुटाने की ही आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए उपयुक्त अवलंबन ढूँढ़ निकालना साधारणतया कठिन ही पड़ता है और श्रमसाध्य भी होता है। फिर भी जहाँ चाह वहाँ राह निकलने वाली उक्ति प्रयत्नशीलों के लिए सार्थक ही होकर रहती है।

कुसंग से बचने और सुसंग से लाभ उठाने का सरलतम तरीका यह है कि जीवन विद्या के हर पक्ष पर प्रकाश डालने वाले सत्साहित्य को पढ़ते रहने में रुचि उत्पन्न की जाए, जब भी खाली समय दीख पड़े, तभी उन्हें पढ़ने में लगा जाए। यों ऐसी पुस्तक कम ही मिलती हैं, बिरले ही बुकसेलर उन्हें रखते और बेचते हैं। बाजारू माँग घटिया वस्तुओं की ही होती है, अपराधी प्रवृत्ति भड़काने वाले, कामुक उत्तेजना देने वाली, दिवास्वप्नों में उलझाने वाली, अप्रासंगिक कथा-कहानियों वाली पुस्तकें ही प्रायः हर पुस्तक विक्रेता के यहाँ भरी पड़ी पाई जाती हैं, उनकी बिक्री भी होती है और लाभ भी मिलता है। ऐसी दशा में खपत और नफे को प्रधान मानने वाले लेखक, प्रकाशक, विक्रेता वैसे ही साहित्य को प्रमुखता देते हैं, इतने पर भी तलाश करने वाले सत्साहित्य भी जहाँ-तहाँ से ढूँढ़ ही निकालते हैं। उन्हें सामर्थ्यानुसार खरीदा जा सकता है, जिनके पास वे मिल सकें उनसे माँगकर पढ़ा जा सकता है। पुस्तकालयों का भी सहारा लिया जा सकता है, ऐसी पुस्तकों को एक बार में पढ़कर ही नहीं फेंक देना चाहिए वरन् उन्हें धर्मग्रंथों की तरह बार-बार पढ़ने का पुण्य माहात्म्य समझकर गंभीरतापूर्वक धीरे-धीरे मनन-चिंतन करते

हुए पढ़ना चाहिए। उनसे जितना संभव हो और आवश्यक हो उतना ग्रहण करना चाहिए। अवांछनीयता के उन्मूलन में और सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन में इस प्रकार के सत्साहित्य से सहायता लेनी चाहिए। इन दिनों सत्संग तो कठिन है, ऐसे मनीषी ढूँढ़े नहीं मिलते जो समय को समझें और व्यक्ति के स्तर को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त परामर्श दें। इस अभाव की पूर्ति सत्साहित्य के बिना और किसी प्रकार होनी संभव नहीं। जो बिना पढ़े हैं वे दूसरे पढ़े लोगों से सुनकर अपनी सद्ज्ञान पिपासा पूरी करते रह सकते हैं।

इस माहात्म्य को ध्यान में रखते हुए समझ यह भी लेना चाहिए कि भटकाव उत्पन्न करने वाली और पतन की प्रेरणा देने वाली पुस्तकों की हानि भी कम नहीं है। कुमार्गगामिता को प्रेरणा देने वाला साहित्य पढ़ने वाले की मानसिकता को पतन के गर्त में गिराकर रहता है।

पतनोन्मुख प्रेरणाएँ देने वाले साधनों की, मनोरंजनों की कमी नहीं। नाटक, सिनेमा, अभिनय, नृत्य आदि में उत्कर्ष के कम और अपकर्ष के तत्त्व अधिक रहते हैं। रेडियो-दूरदर्शन भी इससे बचे नहीं हैं, ऐसी दशा में सर्वथा उपयोगी माध्यम का मिल सकना तो कठिन है, पर अपने में इतनी विवेक बुद्धि जागृत की जा सकती है कि चयन के मूल में जो श्रेष्ठ है उसी को देखा जाए। यदि मिला-जुला देखने को मिलता है तो फिर अपनी परख खरे-खोटे की होनी चाहिए। राजहंस की तरह नीर-क्षीर विवेक की परख अपने भीतर उत्पन्न कर ली जाए तो मिले-जुले माहौल में भी वह चुना जा सकता है, जो उपयोगी और उत्कर्ष की प्रेरणा देने वाला हो। दृश्य और श्रव्य में प्रभावित करने की असाधारण क्षमता है। इस तथ्य को समझते हुए वही देखा जाए जो उपयोगी है, वही सुना जाए जो सद्विचारों के बीजारोपण एवं उत्पादन में सहायक हो।

परिपक्व आयु में भला-बुरा समझने की बुद्धि समयानुसार परिपक्व हो जाती है, तब अवांछनीयता के आक्रमण का उतना खतरा नहीं रहता, किंतु किशोरावस्था तो ऐसी बारूद है, जिसमें अवांछनीयता की छोटी-सी चिनगारी भी ज्वाल-माल बनकर धधकती है। अच्छे वातावरण का प्रभाव तो धीमी गति से होता है। वटवृक्ष देर में बढ़ता और विकसित होता है किंतु बरसाती खरपतवार तो दो-चार दिन में ही समूची जमीन को घेर लेते हैं—इस तथ्य से सभी को अवगत होना चाहिए।

लड़कियों की समस्या और भी अधिक पेचीदा है। यों आमतौर से लड़कियाँ घरों में रहती हैं, इसलिए उनके शील-सदाचार पर उँगली उठने जैसे प्रसंग कम ही आते हैं, पर सहशिक्षा से लेकर अनेकों से मिलने-जुलने से संबंधित उत्सवों में ऐसा माहौल बनता है, जिससे उन्हें गलत ढंग से सोचने की बात बन जाती है। विवाहिताएँ अपने सरस संस्मरण सुनाती हैं, कुमार्ग पर चलने से कितनी मौज उड़ाने, धन कमाने का अवसर मिलता है—जैसे प्रसंग सुनकर कई भोली-भावुकों के मन डगमगाने लगते हैं, कई बार मनचले लड़के भी सब्जबाग दिखाकर उनका मन मोह लेते हैं। प्रेमपत्रों का आदान-प्रदान चल पड़ता है, लड़कियाँ तो लोकलज्जा से उन पत्रों को कहीं दिखा नहीं पातीं, पर लड़के उन्हें जहाँ-तहाँ दिखाकर बदनाम करने, विवाह में अडंगा लगाने जैसी धमकियाँ देकर उनसे अनुचित स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं। कई बार तो इस प्रकार के कुचक्रों में फँसी लड़कियों की जिंदगियाँ ही बर्बाद हो जाती हैं। इसका पश्चात्ताप उन्हें जीवनभर करना पड़ता है। इन खतरों से नासमझ किशोरियों को सावधान करते रहना घर की वयस्क महिलाओं का, समझदार सहेलियों का, अध्यापिकाओं का कर्त्तव्य है। भावुकता तो सभी किशोरों में जीवन के अन्य समयों की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में पाई जाती है, पर किशोरियों की भावुकता और अनुभवहीनता मिलकर ऐसी समस्या बना देती है, जिसमें उनके लिए हर प्रकार खतरा ही

खतरा है। लड़के तो पल्ला झाड़कर अलग हो जाते हैं, उनके लिए सामाजिक नियम भी ढील छोड़ देते हैं, पर लड़कियों के संबंध में बरती जाने वाली अनुदारता तो उनके लिए विपत्ति बनकर ही सामने आती है। थोड़ी-सी चूक भी उनके लिए जिंदगी भर तक तिरस्कृत करने वाली, दुःख देने वाली है। इसलिए लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को अधिक सतर्क किया और सावधान रखा जाना चाहिए। विशेषतया अवांछनीय लड़कों या लड़कियों के साथ अनावश्यक घनिष्ठता बढ़ने देने की बात को ध्यान में रखना चाहिए। यों नागरिक स्वतंत्रता की बात सिद्धांततः सब प्रकार मान्यता देने योग्य है, पर यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इस संदर्भ में अतिवाद न बरता जाए, अनावश्यक घनिष्ठता की छूट न दी जाए। भले ही वह बहिन-भाई, सहेली-सहेली आदि रिश्तों की आड़ ले रहे हों। मर्यादाओं का अतिक्रमण न होने देने में ही सबकी सब प्रकार भलाई है। लड़कियों के संबंध में तो यह जागरूकता और भी अधिक रखी जानी चाहिए।

विलासिता, सज-धज और ठाट-बाट की आड़ में बढ़ता हुआ खर्च किसी को भी कुमार्ग पर धकेल सकता है। सीमित और आवश्यक खर्च की पूर्ति तो सही हो सकती है, पर असाधारण खर्च की पूर्ति के लिए तो गलत तरीके ही अपनाने होते हैं।

अपराधी मनोवृत्ति पनपने और परिपक्व होने से पहले स्वभावगत दोष-दुर्गुण पनपते हैं, आलस्य-प्रमाद उनमें से प्रमुख हैं। आवेशग्रस्तता, तुनकमिजाजी, उत्तेजना, बात-बात में आक्रोश प्रकट करने की मनोवृत्ति भी ऐसी है। इस प्रकार का स्वभाव मस्तिष्क पर तनाव बनाए रखता है, सामने प्रस्तुत कार्यों को ठीक तरह नहीं करने देता। दूसरों का सहयोग प्राप्त करने में भी असफलता मिलती है, सभी काम आकुल-व्याकुल मनःस्थिति में अस्त-व्यस्त पड़े रहते हैं। फलतः अधूरे कार्यों की श्रृंखला जुड़कर सभी क्रिया-कलापों को असफल बना देती है। असफलता मन में असंतोष, समुदाय में तिरस्कार-उपहास का वातावरण बनाती हैं। इन

परिस्थितियों में व्यक्ति भीतर और बाहर से टूटने लगता है, इसकी एक परिणति तो यह होती है कि व्यक्ति दीन-हीन स्थिति अपना ले और हर काम में उदास होकर निठल्लापन अपना ले। साधु-बाबा आदि का वेश बनाकर परावलंबी जीवन जिए, संसार को मिथ्या-माया कहने लगे, वैराग्य का लबादा ओढ़ ले और ज्यों-त्यों करके दिन गुजारे। दूसरी प्रतिक्रिया यह होती है कि किसी प्रकार धन अर्जित करने के लिए अपराधी, आततायी जीवन जीने लगे। ऐसे लोगों की अंतःचेतना सदा विक्षुब्ध रहती है, उसको काबू में रखने के लिए नशेबाजी का सहारा लेना पड़ता है। आरंभ में सिगरेट-गाँजा आदि से काम चलाता है, पर स्थिति अधिक बिगड़ने पर शराब, स्मैक, हेरोइन आदि बड़े नशे करने पड़ते हैं। उनकी आदत छूटती नहीं, घर की पूँजी चुक जाती है, कर्ज मिलता नहीं—ऐसी दशा में छोटे-बड़े अपराध करते रहना ही एकमात्र उपाय रह जाता है। दुर्गुणों का अंत अपराधी प्रवृत्तियों में पूरी तरह जकड़ जाने के रूप में ही होता है। यही है दुःखद दुर्भाग्य जिसका आरंभ किशोरावस्था से छोटे रूप में होता है और फिर वह बढ़कर समूचे व्यक्तित्व को ही अपने चंगुल में पूरी तरह जकड़ लेता है। तब न दूसरों का समझाना काम देता है और न अपना मनोबल ही ऐसा रहता है कि अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियों से लोहा ले सके, उनसे पीछा छुड़ाकर अपने को सभ्य नागरिक की श्रेणी में बिठा सके। ऐसे लोगों का अंत किस प्रकार होता है—यह उन लोगों से पूछा जा सकता है, जिनका ऐसे लोगों से वास्ता पड़ा है और उनका अंत देखा है।

अपराधी प्रवृत्ति एक प्रकार की छूत वाली बीमारी है। जो पहले परिवार के नवोदित सदस्यों पर आक्रमण करती है। कुकर्मी लोगों की संतानें भी अनैतिक कार्यों में ही रुचि लेती हैं और उन्हीं की अभ्यस्त बनती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा भी होता है कि जिनके साथ उनकी घनिष्ठता है, उन्हें भी उसी पतन के गर्त में गिरने का कुयोग बने। ऐसे लोग प्रयत्नपूर्वक अपना संपर्क क्षेत्र

बढ़ाते हैं और उद्धत आचरणों के फलस्वरूप तत्काल बड़े लाभ मिलने के सब्जबाग दिखाते हैं। आरंभ में हिचकने वालों की हिम्मत बढ़ाने के लिए कितने ही इस आधार पर बड़े-बड़े लाभ प्राप्त कर लेने के मनगढंत वृत्तांत सुनाते हैं। जिन्हें सच मानने और उस प्रकार का आचरण करने में अपनी भी योग्यता देखकर सहज ही तैयार हो जाते हैं। गिरोह बनता है और साथियों की सहायता से अपराधी लोगों का समुदाय बनता है। संगठित प्रयत्नों की सफलता सर्वविदित है। अनाचार पर उतारू लोग भी आक्रामक नीति अपनाकर आरंभिक सफलता तो प्राप्त कर ही लेते हैं, पीछे भले ही उसके भयानक दुष्परिणाम भुगतने पड़ें।

❐ ❐

समय से पहले की रोकथाम

रोग बढ़ने पर चिकित्सा में भारी खर्च करना पड़े, भारी मुसीबत उठानी पड़े, काम-काज रुके और परिजनों, संबंधियों को चिंता में पड़ना पड़े, इससे पूर्व यही अच्छा है कि समय रहते ऐसा रहन-सहन अपनाया जाए, जिसके कारण रोग होने की संभावना ही न रहे। नीति, अपराधी प्रवृत्ति पनपने से पूर्व अपनाई जानी चाहिए। जिस वातावरण में दुष्प्रवृत्तियों का उत्पादन और अभिवर्धन होता हो, उन्हें पनपने नहीं दिया जाना चाहिए। पनप रही हों और उन अड्डों पर नियंत्रण कर सकना अपनी स्वल्प शक्ति के लिए संभव न हो तो इतना तो करना ही चाहिए कि अपने को उस माहौल के प्रभाव से यथासंभव दूर ही रखा जाए, रुचि न ली जाए तो दूषित प्रभावों से बहुत हद तक बचा जा सकता है। आत्मरक्षा की सामर्थ्य तो सभी में होती है। रुचि न लेने पर अनाचारियों के चंगुल से सरलतापूर्वक बचा जा सकता है।

लालची प्रकृति के लोग ही ठगे जाते हैं। हर किसी को हर कोई नहीं ठग सकता। जो ईमानदारी और परिश्रम की कमाई से संतुष्ट हैं, जिन्हें हराम का, मुफ्त का, लूट का पैसा नहीं चाहिए, वे जालसाजी के चंगुल में फँसने से सहज ही बच जाते हैं। वे आकर्षक प्रस्तावों और प्रलोभनों पर ध्यान ही नहीं देते। ललचाने वालों की उपेक्षा करते हैं। उनके जाल में फँसने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। ऐसी दशा में ठगों की दाल प्रायः नहीं ही गलती। धूर्तों की यह विशेषता होती है कि वे उन लोगों को ताड़ लेते हैं, जिनकी प्रकृति अति भावुकता की, अति उत्साह की होती है। कहते हैं कि जहाँ घाव होता है वहाँ मक्खी बैठती है। नमी पाकर मच्छर उपजते हैं। यदि अपने स्वभाव को इतना परिपक्व बना लिया जाए कि अनैतिक, अनुचित लोभ देने वाले आकर्षणों से बच सका जाए तो फिर धूर्तों का समुदाय आस-पास फिरते रहने पर भी अपना कुछ बिगाड़ न

सकेगा। समान प्रकृति के लोग ही प्रायः अपने जैसे स्वभाव वालों को फुसलाते हैं और धूर्तों और मूर्खों का जोड़ा बन जाता है। हानि उठाने और हानि पहुँचाने का सिलसिला प्रायः इसी प्रकार बनता है। यदि रास्ते पर से काँटे नहीं बीने जा सकते तो कम से कम पैरों में जूते पहनकर अपना बचाव तो किया ही जा सकता है।

अनाचारियों के प्रभाव में आना, उनके साथ सहानुभूति प्रकट करना, सम्मान देना आरंभ में ऐसा लगता है कि इस बहाने इन लोगों से अपनी रक्षा होती रहेगी। वे अपना समझेंगे और आक्रमण न करेंगे। जरूरत पड़ी तो इनसे कुछ सहायता भी मिल सकती है। दूसरे कमजोरों पर इस मैत्री की चर्चा करके, उन्हें आतंकित भी किया जा सकता है। इस प्रकार सोचने वाले प्रायः भ्रम में रहते हैं। आतताई, परिचित और निकटवर्ती लोगों को ही अपना शिकार बनाते हैं, क्योंकि उनकी मनःस्थिति और परिस्थिति से वे अधिक अच्छी तरह परिचित होते हैं। उन कमजोरियों को जानते हैं, जिनके आधार पर आक्रमण किया जा सकता है, सफलता पाई जा सकती है। सरल को छोड़कर कठिन को अपनाने के चक्कर में कौन पड़े ? सीधे पेड़ ही काटे जाते हैं। टेड़े-तिरछे को काटने के झंझट में लकड़हारे भी नहीं पड़ते। अपरिचितों पर हाथ छोड़ने से पहले सौ बार सोचना पड़ता है कि कहीं उलझने पर लेने के देने न पड़ें। किंतु जिनके संबंध में पूरी जानकारी है, उन पर घात लगाने में सरलता भी रहती है और सफलता भी मिलती है। इसलिए देखा गया है कि अपराधी प्रकृति के लोग पहले अपने परिचितों, निकटवर्तियों पर ही हाथ साफ करते हैं। इस कटु सत्य को समझाते हुए समझदारों को चाहिए कि वे अवांछनीय तत्त्वों से बचे रहने का प्रयत्न करें। साधारण दुआ-सलाम की बात दूसरी है, पर घनिष्ठता की स्थिति तो भूलकर भी नहीं बनने देनी चाहिए। उनके साथ बैठक-उठक का, मेल-जोल का, जाने-बुलाने की स्थिति तो आने ही नहीं देनी चाहिए। साँप-बिच्छू जैसे घातक प्राणियों के समीपवर्ती लोग ही अधिक घाटा उठाते हैं।

कोई समय था जब शत्रु और मित्र की पहचान सरलतापूर्वक हो जाती थी। शत्रु बोलचाल बंद कर देते थे। कटु शब्द बोलते थे, निंदा करते थे, झगड़े पर आमादा रहते थे। हानि पहुँचाने का अवसर ढूँढ़ते और समय-समय पर चोट करते थे। इस व्यवहार के आधार पर सरलतापूर्वक जाना जा सकता था कि शत्रु कौन है ? उससे किस प्रकार बचा जाए, कैसे निपटा जाए, इसके उपाय भी सोचे जाते थे और प्रयत्न भी किए जाते थे।

मित्र की पहचान तो और भी सरल थी। वे कठिन समय में सहायता करते थे। हित चिंतन में, हित साधन में निरत रहते थे। कष्ट-कठिनाइयों से बचाते और आ पड़ने पर उनसे बचाने में शक्ति भर सहायता करते थे। उनका सद्भाव निःस्वार्थ होता है। कुछ झपट लेने की अपेक्षा अपनी ओर से जो बन पड़ता था, उसे देने की बात ही सोचते थे। गिरने से बचाते और ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। इन लक्षणों को देखते हुए यह सहज समझा जा सकता था कि कौन मित्र है ? उस पर भरोसा भी रखा जाता था और यह माना जाता था कि अपने पास हित-चिंतक सहयोगी के रूप में बहुमूल्य संपदा है।

आज का प्रचलन इसके सर्वथा विपरीत है। शत्रुओं ने मित्र बनकर घात करने का धंधा अपना लिया है। वह इस आधार पर अपना स्वार्थ अधिक अच्छी तरह, अधिक सरलतापूर्वक सिद्ध कर लेते हैं। शत्रु से सावधान रहा जाता है, पर मित्र पर तो आमतौर से विश्वास ही किया जाता है। उसकी बातों पर तो भरोसा किया जाता है। उसके क्रिया-कलापों को भी संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जाता। इस सुविधा का लाभ उठाकर मित्र रूपधारी लोग शत्रुता जैसी घात आसानी से लगा लेते हैं। विश्वासघात स्तर के अपराध इन दिनों जितने होते हैं, उतने इससे पूर्व कभी नहीं होते थे। इस प्रचलन को देखते हुए प्रत्यक्ष शत्रुओं की अपेक्षा परोक्ष शत्रुओं से सावधान रहने की अधिक आवश्यकता है। हर किसी के साथ मित्रता जैसी घनिष्ठता बना लेने का यह समय है नहीं। जिनसे मित्रता पलने लगी

हो, उनके संबंध में तो बार-बार समीक्षा करते रहने की आवश्यकता है, अन्यथा सरलता, सज्जनता बरतने वाले बुरी तरह मरते-मारे जाते देखे जाते हैं।

धनी और महिलाओं पर घात लगाने में मित्र वेशधारी ही कमाल करते देखे गए हैं। उधार माँगने, साझा करने के अनेकों बहाने गढ़ लिए जाते हैं। भलमनसाहत इसमें साथी का और अपना भला सोचती है और उनके हाथों पूँजी फँसा देने में संकोच नहीं करती उनके निमित्त जमानत देने वाले भी इसी प्रकार फँसते और जमानत वाला पैसा स्वयं चुकाते देखे गए हैं। फर्जी जायदाद बेचने नकली जेवर गिरवीं रखने के अतिरिक्त और भी कितनी ही प्रकार की हेरा-फेरी है, जिन्हें मित्र बनकर ही आसानी से किया जा सकता है। ठगे जाने वालों और जोखिम उठाने वालो में अधिकांश वे होते हैं, जो मित्रों द्वारा ठगे गए। ऐसी घटनाएँ जिनके सामने नहीं आई हैं, वे दूसरे इस प्रकार के जोखिम उठाने वालों से पूछकर इस प्रचलन को जान लें कि इन दिनों किस प्रकार की मित्रता कितनों को कितना खतरा पैदा करने वाली सिद्ध हुई है।

जिनके साथ पुराने परिचय हैं, जिनकी आदतों का, स्वभाव का, चाल-चलन का पहले से ही बहुत अधिक परिचय है, उनकी बात दूसरी है अन्यथा कुकरमुत्ते की तरह यकायक उगने वाली मित्रता और देखते-देखते बन जाने वाली घनिष्ठता से ही अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। इस प्रकार हथेली पर सरसों जमाने का बाजीगरी खेल वे ही खेलते हैं, जिन्हें जल्दी-जल्दी अपना स्वार्थ सिद्ध करके नौ-दो ग्यारह होना है। जहाँ ऐसी मैत्री उभर पड़े, वहाँ समझना चाहिए कि कोई कुचक्र उसके साथ जुड़ा हुआ है। उस बढ़ती दोस्ती से हाथ पीछे न हटाया गया तो समझना चाहिए कि किसी बड़े अनर्थ का शिकार बनने में देर नहीं है।

नई पीढ़ी के लड़के अपनी कुदृष्टि वाली घात को सफल बनाने के लिए किन्हीं लड़कियों के साथ किसी प्रकार निकटता बनाने की कोशिश करते, बहिन, भतीजी, भाँजी का रिश्ता जोड़ते

हैं। बात कुछ भेंट उपहार देने से आरंभ करते हैं। मेले-तमाशों में साथ जाने में सफल हो जाते हैं। यहीं से अवांछनीय हरकतों का सिलसिला चल पड़ता है। जब तक बात छिपी रहे, तब तक तो खैर, पर ऐसे प्रसंग प्रकट हुए बिना नहीं रहते। चर्चा का विषय बनने पर लड़के-लड़की के परिवार की इज्जत पर उँगली उठने लगती है और जब विवाह शादी का समय आता है, तब वही बदनामी ऐसे संकट खड़े करती है, जिनकी कभी पहले कल्पना भी नहीं की गई थी। विवाह कर लेने की सौ-सौ कसमें खाने वाले अक्सर कहीं से नया आकर्षक प्रस्ताव आने पर उस खिलवाड़ को पूरी तरह भूल जाते हैं, जो उन्होंने प्रेम-प्रसंग चलने के दिनों की थी। इस स्थिति में लड़के तो पल्ला झाड़कर अलग हो जाते हैं, पर लड़कियों को जिस संकट का सामना करना पड़ता है, उसे जान सकना दूसरों के लिए कठिन हैं।

मित्रता की परिधि में आने वाले लोगों में सभी एक जैसे नहीं होते। उनमें कुछ अच्छे एवं उपयोगी भी होते हैं, जिनके मिलने से शक्ति सामर्थ्य में अनेक गुनी वृद्धि होती है। महत्त्वपूर्ण कार्य सधते हैं। संघ शक्ति का महत्त्व सर्वत्र माना गया है, पर संशयावस्था में भले-बुरे का चयन करने के पीछे कोई कसौटी होनी चाहिए। वह यह है कि घनिष्ठता साधने वाला व्यक्ति आदर्शों की उत्कृष्टता अपनाने की आत्मशोधन की, लोक-कल्याण की चर्चा करता है या किसी भी प्रकार स्वार्थ साधन के लिए परामर्श देता है। आदमी के पेट में जो कुछ होता है, वही उसके मुँह से निकलता है। वार्तालाप में वे बातें उभरकर ऊपर आती हैं जो पेट में होती हैं। शराब पीकर आने वाले के मुँह से बदबू आती है। इस प्रकार दुरात्मा मधुर वार्तालाप करते हुए उन प्रयोजनों की ओर आकर्षित रहते, आकर्षित करते दीख पड़ते हैं, जो नीति-मर्यादाओं का उल्लंघन करके किसी भी प्रकार स्वार्थ सिद्ध कर लेने वाली बात का समर्थन करते हैं। यही वह कसौटी है, जिस पर कसने से कुछ ही दिनों में प्रकट हो जाता है कि घनिष्ठता साधने का उद्देश्य क्या है ? सच्चे मित्र वे ही हो

सकते हैं, जो नीति पर चलते हैं और दूसरों को नीति पर चलाते हैं। इसके विपरीत जिनको अनीति करते और अनीति करने के लिए प्रेरित करते पाया जाए, समझना चाहिए कि इनकी घनिष्ठता में खतरा ही खतरा है।

आकर्षक लगने वाली सभी वस्तुएँ उपयोगी नहीं होतीं। सर्प, बिच्छू, काँतर, कनखजूरे जैसे प्राणी देखने में सुंदर लगते हैं, पर उनके गुणों को देखने पर पता चलता है कि वे समीप आने वाले को कितना त्रास देते हैं ? प्रथम पहिचान में ही न किसी का मित्र बनना चाहिए और न किसी को बनाना चाहिए। चरित्र के बारे में बारीकी से देखना, समझना और परखना चाहिए। मात्र शालीनता के प्रति आस्था रखने वाले और आदर्शों का दृढ़तापूर्वक अवलंबन करने वाले ही इस योग्य होते हैं कि उनसे घनिष्ठता का संबंध स्थापित किया जाए।

❑ ❑

प्रतिरोध अनिवार्य रूप से आवश्यक

कुछ लोग अपराधों के अभ्यस्त हो जाते हैं, लगातार दुष्कृत्य करते और उनसे लाभ उठाते रहने के उपरांत उनकी मान्यता बन जाती है कि आक्रमण में लाभ ही लाभ है। अनीति अपनाकर अधिक लाभ उठाया जा सकता है। कम परिश्रम में अधिक लाभ उठाने का चस्का ऐसा है, जो एक बार किसी को लग जाने पर बाद में उसे छुड़ाना-छोड़ना कठिन होता है। गुंडों की भी एक बिरादरी है, वे अपने संगी-साथी ढूँढ़ लेते हैं, गिरोह बना लेते हैं और सम्मिलित रूप से षड्यंत्र बनाते, कुचक्र रचते और अनेक उपायों से भोले-भालों पर आक्रमण करते हैं और उनसे अनुचित लाभ उठाते हैं। सामान्य लोगों की प्रकृति किसी प्रकार झंझटों से बचे रहने की होती है, वे अनीति सहकर भी इसलिए चुप हो जाते हैं कि कौन विरोध करके उपद्रव बढ़ाए, अधिक हानि पहुँचने की संभावना को आमंत्रित करे। इस भलमनसाहत दिखाने वाली बात के पीछे डरपोकपन-कायरता का पुट भी रहता है—इसी कमजोरी का लाभ उठाकर अवांछनीय तत्त्वों के हौंसले बढ़ते हैं और वे अधिक उत्साहित होकर बड़े कदम उठाते हैं। जिस प्रकार आग में ईंधन पड़ते रहने से वह भड़कता है, उसी प्रकार जनसाधारण को डरपोक पाकर आक्रमणकारी अपनी गतिविधियों को और भी अधिक व्यापक बनाते जाते हैं। इस लाभ को उठाने के गिरोह प्रायः बढ़ते ही जाते हैं। रोकथाम के कारगर प्रयत्न न होने पर अवांछनीयता की यह अभिवृद्धि स्वाभाविक भी है।

देखना यह है कि दुष्टता की इस अभिवृद्धि को दिनदिन अधिक व्यापक बनने से रोका कैसे जाए ? मोटा उत्तर यह हो सकता है कि सरकार इसे रोके, पुलिस उन लोगों को पकड़े, मुकदमा चलाए और जेल पहुँचाए। पर यह सब कहना जितना सरल है उतना करने में आसान नहीं है। अपराधों की रोकथाम करने की जिम्मेदारी

जिनकी है उन लोगों में से सभी ईमानदार और कर्त्तव्य पालन करने वाले होते हों ऐसी बात नहीं है। अनुचित लाभ उठाने का चस्का, जिस पर अवांछनीय तत्त्वों का लाभ हुआ है—हो सकता है कि वैसी ही प्रवृत्ति उन लोगों में भी घुस पड़ी हो, जो अनाचारियों से तालमेल बिठाकर अपनी साझेदारी का द्वार खोलते हों। ऐसी दशा में स्थिति और भी विषम हो जाती है, एक ओर जनता की कायरता दूसरी ओर पकड़ने वालों की साँठगाँठ। इस ओर दुहरा प्रोत्साहन मिलने से तस्करों को दोनों ओर से प्रोत्साहन मिलता है। चुप रहने की नीति अपनाने पर यह कुचक्र और भी अधिक बढ़ जाता है।

सोचना यह है कि इन दुःखद परिस्थितियों को रोका कैसे जाए ? इसके लिए कई उपाय हो सकते हैं, जहाँ तक सरकारी अपराध निरोधक तंत्र का प्रश्न है, उसकी उपयुक्तता तभी बन सकती है जब उनका नियंत्रक तंत्र वस्तुतः ईमानदार हो और सच्चे मन से रोकथाम का इच्छुक हो। यदि ऐसा न हो तो ऊपर वाले की शिथिलता पर साझेदारी रहने की दशा में तो सब कुछ ढकोसला ही बनकर रह जाता है। अपराधियों को पकड़ने की दौड़-धूप दिखावा मात्र बनकर रह जाती है। वास्तविक अपराधी पकड़े नहीं जाते, पकड़े जाते हैं तो मुकदमे में खामियाँ रहने या गवाह न मिलने की स्थिति में छूट जाते हैं। जमानत करा लेते हैं, छूटने पर वे अपने पकड़े जाने में सहायता करने वाले पर और भी अधिक क्रूद्ध होकर अधिक घातक प्रहार करते हैं। इस प्रकार अपराधियों को सरकार तंत्र द्वारा पकड़े जाने की व्यवस्था तभी कारगर सिद्ध हो सकती है, जब उसके पीछे कर्त्तव्य परायणता एवं ईमानदारी का गहरा पुट हो।

देखना यह है कि क्या सरकारी समुचित सहायता न मिलने पर भी बड़े स्तर पर बढ़ती अपराधी प्रवृत्ति की रोकथाम में कुछ कारगर भूमिका हो सकती है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि 'नागरिक पुलिस' के रूप में एक वर्ग ऐसा गठित किया जाए जो अपराधियों को प्रताड़ित करने में सहायता करे। पुलिस को आमतौर से शिकायत रहती है कि अपराधों की संभावना से अवगत

होते हुए भी उन्हें समय रहते सूचना नहीं मिल पाती। फलतः उनके लिए समय से पूर्व दबोचना संभव नहीं होता। इस शिकायत को दूर करने का दायित्व यह सेवादल स्तर का संगठन अपने कंधों पर उठाए। यदि इससे कुछ कम सधने की संभावना दीखती हो तो उसके संबंध में जनता का पूरा सहयोग मिले, अकेला व्यक्ति डरकर चुप हो सकता है, पर यदि विरोध के मोर्चे पर एक संगठन बन गया हो तो हर किसी का हौंसला बढ़ सकता है और गुंडागर्दी का विरोध हो सकता है, पुलिस का यथासंभव सहयोग मिल सकता है। इसके अतिरिक्त अपराधियों के विरुद्ध गवाहियों के न मिलने की समस्या का हल भी जनस्तर पर ही करना पड़ेगा; जिन्हें अपराधियों की वास्तविक जानकारी है, उन्हें गवाही देने की हिम्मत करनी चाहिए। समझना चाहिए कि यह भी समाज की एक महत्त्वपूर्ण सेवा है, मानवता के साथ, सामाजिकता के साथ जुड़ी हुई एक बड़ी जिम्मेदारी है कि अपराधियों को पकड़वाने से लेकर उन्हें दंड दिलाने तक की घटनाओं को इस बहाने दब जाने की स्थिति न आने दें कि उन्हें गवाहियाँ नहीं मिलीं। जिस समाज में इतना भी साहस न होगा उसे दबते-पिसते और अनीति सहने की शिकायत भी क्यों करनी चाहिए ? अपनी सहायता आप करने पर ही दूसरे लोग सहायता करने के लिए आगे आते हैं—इस तथ्य को समझते हुए ही अनीति प्रतिकार की योजना बनानी चाहिए।

मोर्चा खाली देखकर ही थोड़े-से आक्रमणकारी भी चढ़ दौड़ते हैं और मनमानी सफलता प्राप्त कर लेते हैं। यह स्थिति न आने दी जाए तो अपराधों की रोकथाम का प्रयोजन बड़ी सीमा तक सरल हो सकता है। जहाँ चौकीदार और चौकसी का प्रबंध सही होता है, वहाँ चोरी की घटनाएँ प्रायः कम ही होती हैं, जहाँ सन्नाटा छाया रहता है, वहीं घात अधिक लगती है। अपराध विरोधी नागरिक दल यदि संगठित, सजग और कटिबद्ध रहें तो वह अपने बलबूते भी ऐसा माहौल बना सकता है, जिसके रहते अपराधियों की दाल गलना कठिन हो जाए। जहाँ प्रतिरोध की संभावना देखते हैं, वहाँ से

आतताई भी कन्नी काटते हैं। आधी संभावना तो संगठित नागरिक पुलिस का गठन होने पर भी टल जाती है। अनाचारी प्रायः रात के अंधेरे में ही घात लगाते हैं, दिन में तो उनका हौंसला भी पश्त रहता है। अंधकार वहाँ समझा जा सकता है, जहाँ रोकटोक करने के लिए कटिबद्ध व्यक्ति या संगठन नहीं है। अंधेरे में ही कृमिकीटक पलते हैं, वहीं चमगादड़-छछूँदर घर बनाते हैं। गंदगी में मक्खियाँ और सीलन में मच्छर अपना वंश बढ़ाते हैं। प्रतिरोध की संभावना न रहने पर ही अनाचार का हौंसला बढ़ता है—इस तथ्य को समझते हुए हर जगह, हर गाँव-मुहल्ले में ऐसे शूरवीर साहसियों के संगठन खड़े करने चाहिए जिसे अपराध निरोधक तंत्र समझा जा सके। उनका नाम 'सेवा-दल' जैसा कुछ भी रखा जा सकता है।

इस दल का प्रथम कार्य प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा की जिम्मेदारी और अनीति से निपटने की साहसिकता उत्पन्न करने वाली भावनाएँ जगाना होना चाहिए। जनसाधारण के मन में से भय की भावना को हटाया जाए और उस शौर्य-साहस को जगाया जाए जो अनीति को सहन करने से इन्कार कर सकने की मुद्रा अपना ले। इस प्रकार का सार्वजनिक मनोबल बढ़ाने के लिए उसी स्तर का साहित्य बढ़ाने-सुनाने, नाटक-अभिनय दिखाने, काव्य-संगीत आदि के आयोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि ऐसे साहसिक घटनाक्रम प्रत्यक्ष घटित नहीं होते, वैसे प्रतिरोध सामने देखने में नहीं आते तो भी उस अभिनय की पूर्ति प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर जनसाधारण के मन में जमाए जाने चाहिए। यह विशेषता जन्मजात रूप से उत्पन्न की जानी चाहिए, यह भी ईमानदारी-समझदारी के समान ही एक अति महत्त्वपूर्ण गुण है। उसके बिना मनुष्य का प्रगति करना तो दूर, जीवित रहना भी कठिन है। यह भावना हर नागरिक में, हर स्त्री-बच्चे में भरी जानी चाहिए। जंगल में आदिवासी हिंसक पशुओं के बीच झोंपड़ी डालकर ही निर्वाह कर लेते हैं—यह हिम्मत का खेल है। उन्नति के लिए भी और सुरक्षा के लिए भी इसकी महती आवश्यकता है, गुंडों से निपटना भी इसी मनोबल के आधार

पर संभव हो सकता है। जहाँ इस स्तर का नागरिक सहयोग मिलेगा वहीं सुरक्षा समितियाँ भी साहसपूर्वक काम कर सकेंगी अन्यथा उस दल में शामिल होने वालों को उनके घर वाले ही डराकर रोक देंगे और जो प्रयत्न रोकथाम के, पहरेदारी के आरंभ हुए भी हैं तो वे जीवंत न रह सकेंगे।

निजी रूप से हर व्यक्ति को अपने निकटवर्तियों-पड़ोसियों से इस स्तर की घनिष्ठता स्थापित करनी चाहिए कि वे एक-दूसरे के दुःख-दर्द में, आड़े समय में काम आ सकें और साथ दे सकें। जहाँ इस प्रकार के सहयोग की भावना रहती है, वहाँ भी अघोषित सुरक्षा की पंक्ति बन जाती है और उस बाड़ को लाँघकर भीतर प्रवेश करने की हर किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। जहाँ असहयोग, उदासी-उपेक्षा रहती है, वहाँ टकराव की स्थिति भले ही न बने, पर बिलगाव की भावना तो रहती ही है। ऐसे असंगठित समुदाय एक-एक करके पिटते रहते हैं और कोई किसी की सहायता के लिए आगे नहीं आता। यह स्थिति किसी भी क्षेत्र में न बन पाए—इसका ध्यान हर समुदाय के मूर्धन्य लोगों को विशेष रूप से रखना चाहिए। इस प्रकार संभावना और साहस का माहौल बनाना भी सुरक्षा का प्राथमिक एवं कारगर उपाय है।

गंदगी बनी रहने पर मक्खी, मच्छर, जुएँ, खटमल, पिस्सू जैसे कृमि-कीटक उत्पन्न होते रहेंगे, इनकी उपज तब तक नहीं रोकी जा सकती जब तक कि सफाई के लिए कीटमारक रसायनों का समुचित प्रबंध न हो। गुंडागर्दी सबसे सरल और फायदेमंद धंधा है, रौब गाँठने, डराने, चापलूसी बटोरने का अवसर मिलता है। मुफ्त का माल भी बड़ी मात्रा में सहज ही हाथ लगता है, यह चस्का जिनको लग गया है, वे छोड़ने का नाम नहीं लेते, जब तक कि उनका कार्य कठिन न बन जाए। प्रतिरोध समर्थ बनकर सामने खड़ा न हो जाए, उन पर समझाने-बुझाने का तो यत्किंचित ही प्रभाव पड़ता है फिर भी वह प्रयास छोड़ा नहीं जाना चाहिए। मनुष्य के अंदर भलमनसाहत भी कहीं न कहीं, किसी न किसी कोने में छिपी रहती है, उसे जगाने का

प्रयत्न किया जाता रहे तो यह भी हो सकता है कि कुकर्मी भी अपना रास्ता बदल दे और भले आदमियों की राह अपना ले।

बड़ी बात दुर्जनों को समझाकर सज्जनता के मार्ग पर लाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि उनके गिरोह को छिन्न-भिन्न करने से लेकर घात लगाने को चलती प्रक्रिया में कारगर अवरोध खड़े कर देना। इसके लिए जनसाधारण को साहस जगाने वाला प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, प्रतिरोध कर सकने वाली साहसिक मंडलियों का गठन किया जाना चाहिए और सरकारी तंत्र तक यह आवाज पहुँचाई जानी चाहिए कि उसके भागीदार अधिकारी कर्मचारी उस कर्त्तव्य का ईमानदारी से पालन करें जिसके लिए उन्होंने जिम्मेदारी कंधे पर उठाई है। इस कार्य में उन्हें जहाँ भी कठिनाई अनुभव हो रही हो, उसे दूर करने के लिए जागरूक नागरिकों को समुचित प्रयत्न करना चाहिए। जनता का साहस, सुरक्षा बलों का पराक्रम और सरकारी तंत्र का समुचित योगदान यदि मिलने लगे तो गुंडागर्दी का उन्मूलन उतना कठिन न रहेगा जितना अब है।

❐ ❐

रोकथाम भी और प्रतिरोध भी

किशोरावस्था तेरह-चौदह वर्ष से आरंभ होती है, पर वह चली जाती है पच्चीस-छब्बीस वर्ष तक। बिना मूँछ वाले ही नहीं मूँछ वाले तरुण भी किशोरों में गिने जाते हैं। कारण कि उनमें जोश तो असाधारण रहता है, पर होश की कमी पाई जाती है। होश का तात्पर्य है—दूरदर्शिता, विवेकशीलता। यह अनुभवजन्य होता है। अनेकों के साथ अनेक प्रकार की घटित हुई भली-बुरी घटनाएँ बताती हैं कि किसी क्रिया का क्या परिणाम होता है ? किस प्रवाह में बहने पर कहाँ पहुँचा जा सकता है ? यह बहुज्ञता से संबंधित है। इसे बाह्य क्षेत्र में घटित होने वाली घटनाओं के द्वारा प्रस्तुत हुए परिणामों को देखकर अधिक सरलतापूर्वक जाना जा सकता है, पर यह कोई लक्ष्मण रेखा नहीं है। कितने ही विचारशील ऐसे भी होते हैं जो चिंतन, मनन और कल्पना शक्ति के आधार पर उचित-अनुचित का निष्कर्ष निकाल लेते हैं। उनका पूर्व संचित ज्ञान और सज्जनों के साथ विचार-विनिमय भी बहुत कुछ सिखा देता है। सत्साहित्य का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने पर भी मनीषियों के निर्धारणों, प्रतिपादनों से भी ऐसा बहुत कुछ सीखा जा सकता है, जो बड़ी आयु के विचारशील ही बहुधा प्राप्त कर पाते हैं।

सही मार्ग पर चलते हुए प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचना और गलत दिशा में चल पड़ने पर अनेकानेक संकटों का सामना करना ऐसा तथ्य है, जिसे जितनी जल्दी समझ लिया जाए उतना ही उत्तम है। इस संदर्भ में जहाँ जितनी कमी पाई जाती है, वहाँ उतनी ही कच्ची-पक्की किशोरावस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। यही वह अवधि है, जिसे किसानों के बीज बोने वाली अवधि कहते हैं। मौसम के कुछ ही दिन ऐसे होते हैं, जिनमें बीज बोने पर समुचित रीति से फसल उगती है। यदि यह समय चूक जाए तो

समझना चाहिए कि फसल की बहुत बड़ी संभावना तिरोहित हो गई। इस तथ्य को समझते हुए समझदार किसान बीज बोने की अवधि का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं और उसे हाथ से नहीं जाने देते। किशोरावस्था को भी ठीक ऐसा ही अवसर माना जाना चाहिए। उसमें स्कूली शिक्षण ही नहीं साथ-साथ यह प्रयत्न भी चलना चाहिए कि सभ्यता सुसंस्कारिता पनपे और नागरिकता, सामाजिकता की मर्यादाओं का स्वभाव में समुचित समावेश चल पड़े।

उठती आयु के किशोर प्रायः स्कूल से चलकर घर तक और घर से चलकर स्कूल तक ही आते-जाते हैं। खेलकूद की आवश्यकता वे पास-पड़ौस में ही पूरी कर लेते हैं। अभिभावकों की नजर भी इन पर रहती है, पर आयु अठारह वर्ष से ऊपर निकल जाने और पच्चीस के लगभग पहुँचने तक स्थिति में भारी अंतर आ जाता है। पढ़ना है तो कालेज जाना पड़ता है, जो घर से दूर होता है। जाने-आने में समय लगता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम, स्काउटिंग खेलकूद आदि अन्यान्य प्रसंगों का भी समावेश होता है। इनमें भी समय लगता है। फिर पढ़ाई के संबंध में अन्य साथियों के घर पूछताछ करने की भी उपयोगिता समझी जाती है। ऐसे ही अनेक प्रसंगों को जोड़कर घर से बाहर रहने का वास्तविक या अवास्तविक कारण गिना देने का अवसर रहता है। इसी बचे हुए समय में यदि नवयुवक चाहे तो कुसंग में पड़ने के लिए अधिक समय निकाल सकते हैं। छोटे बच्चों को तो किसी दिशा में रुझान ही होता है, पर बड़ी आयु के किशोर तो उसे चरितार्थ भी कर सकते हैं। पढ़ाई के लिए, जेब खर्च के लिए कुछ पैसा भी उनके पास रहता है। उसे वे चाहें तो गलत कार्यों में खर्च भी करते रह सकते हैं। अभिभावकों तक वस्तुस्थिति को छिपाए रहने में भी अपनी विकसित बुद्धि के सहारे सफल हो सकते हैं। नशेबाजी इन्हीं दिनों कुसंगति के कारण आरंभ होती है। सिनेमा देखने का चस्का भी इसी खाली समय में लगता है। अश्लील हरकतों से लेकर आवारागर्दी तक के अनेकों दुर्व्यसन पल्ले बँध जाते हैं। यदि किन्हीं को सुयोग मिला तो वे

शालीनता के वातावरण एवं समुदाय के साथ भी अपनी घनिष्ठता बना लेते हैं। इन्हीं दिनों अपने चिंतन को किसी भली-बुरी दिशा के साथ जोड़ा जाता है। जड़ जमने की यही अवस्था है। बाद में तो व्यक्ति कमाने-धमाने के फेर में लग जाता है और जो स्वभाव आरंभिक दिनों में बन गया है, उसी के अनुरूप आचरण करता रहता है।

चूँकि सज्जनता का वातावरण एवं अवसर कम हैं। सब ओर दुःस्वभाव, कुप्रचलन एवं अनाचार का ही बोलबाला है। ऐसी दशा में बहुमत का दबाव और अनाचार का आकर्षण युवकों को अधिक प्रभावित करता है। मानवी मर्यादाओं का उल्लंघन करने की, उच्छृंखलता अपनाने की आदत उन्हें यहीं से पड़ जाती है। यह आरोपण आगे चलकर विष-वृक्ष के रूप में परिणत होता है।

उठती आयु के किशोरों की अपेक्षा बढ़ते और पकती आयु के युवक कुविचारों को अनाचार के रूप में क्रियान्वित करने में अधिक सफल होते देखे गए हैं। इन दिनों विशेष देखभाल की जरूरत है। संकट से बचाने का ठीक समय यही है। इसके लिए सतर्कता, जाँच-पड़ताल, रोकथाम की तो आवश्यकता है ही साथ ही यह प्रयत्न भी होना चाहिए कि उन्हें सुसंगति भी मिले। समय का कार्यक्रम ऐसा बने जिससे उपयोगी कार्यों की व्यस्तता ही छाई रहे। अच्छी प्रकृति वाले सज्जनों के साथ ही बैठना-उठना बन पड़े। अच्छा हो दोस्तों का चुनाव लड़कों के ऊपर न छोड़ा जाए, उनकी टोली बनाने में अभिभावक तथा अध्यापक भी रुचि लें। साथ ही उनके साथ वार्तालाप करते रहने का भी उपक्रम चलाएँ। देखा यह गया है कि आयु बढ़ने के साथ-साथ अभिभावकों और किशोरों के बीच अनावश्यक संकोचशीलता पनपने लगती है। इससे विचारों के आदान-प्रदान में, वस्तुस्थिति समझने और समझाने की व्यवस्था में अड़चन खड़ी हो जाती है। फलतः सुधार-परिवर्तन की संभावनाएँ भी घट जाती हैं। अच्छा हो यह स्थिति कहीं भी न बने। जिस प्रकार छोटे बालकों और अभिभावकों के बीच 'प्यार-दुलार का, हँसने-हँसाने

का उपक्रम चलता रहता है। उसी प्रकार उसमें थोड़ा सुधार करके आयु के अनुरूप स्तर का विचार विनिमय चलता रहे और रोकथाम से लेकर आवश्यक सुझाव पूछने या देने का सिलसिला चलता रहे।

जिन्होंने पढ़ाई आरंभ ही नहीं की या थोड़ा पढ़कर स्कूल से नाम कटवा लिया, उनकी समस्या और भी अधिक जटिल है। वे पूरे मन से, पूरी शक्ति से, पूरे समय घर का काम तो करते नहीं, घर वाले भी उन पर वैसा दबाव नहीं देते। उपेक्षा की मनःस्थिति में किया काम भी अस्त-व्यस्त ही रहता है। ऐसी दशा में परिवार वाले खीझते रहते हैं और रुष्ट होकर असहयोग जैसी स्थिति बना लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि युवक आवारागर्दी में जहाँ-तहाँ घूमने लगते हैं और पढ़ने वाले छात्रों की अपेक्षा इन अध-कचरे, अस्त-व्यस्त युवकों की समस्या और भी अधिक जटिल बन जाती है। अशिक्षा और अनगढ़ स्थिति उन्हें एक प्रकार से और भी अधिक जटिल बना देती है। उन्हें सँभालने में उस दशा में और भी अधिक कठिनाई होती है, जबकि परिवार वाले स्वयं अशिक्षित और समस्याओं से निपटने में अपने पिछड़ेपन के कारण अक्षम हैं।

युवकों को एक उपयोगी मोड़ देने की योजना यह है कि उनके लिए सर्वत्र व्यायामशालाएँ स्थापित की जाएँ। उनमें सम्मिलित होने के लिए हर उठती उम्र वाले को सहमत किया जाए। स्वास्थ्य रक्षा में व्यायाम के योगदान से विस्तारपूर्वक अवगत कराया जाए। यह दिलचस्प विषय ऐसा है, जिसमें यदि नई पीढ़ी को मोड़ा जा सके तो वे अपने शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य भी सुधार सकते हैं। अपना भविष्य बिगड़ने से बचा सकते हैं और प्रगति मार्ग पर चल पड़ने का एक नया आधार प्राप्त कर सकते हैं।

पिछले दिनों व्यायाम के लिए मात्र कसरत तक सीमित थे। उनसे दंड-बैठक कुश्ती आदि का अभ्यास कराया और पहलवान बनाया जाता था। अब इस समग्रता के युग में उनके साथ स्वास्थ्य संरक्षण और स्वास्थ्य-संवर्धन के अनेकानेक पक्ष जुड़ गए हैं। इस आधार पर दुर्बलता और रुग्णता से भी छुटकारा पाया जा सकता है

तथा सामान्य स्वास्थ्य असामान्य बलिष्ठता में विकसित किया जा सकता है। पाठशालाओं की तरह व्यायामशालाओं का भी महत्त्व समझा जाना चाहिए। उन्हें हर जगह स्थापित ही नहीं सक्रिय एवं सक्षम भी बनाया जाना चाहिए। उन्हें चरित्रनिष्ठा एवं अनौचित्य के विरोध का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

समर्थता उभरते देखकर अवांछनीय तत्त्वों की हिम्मत टूटती है। आक्रामकों के इरादे बदलते हैं। जिन्होंने आक्रामक नीति अपनाई हुई है उन्हें भी अपने पैर पीछे हटाने में ही भलाई दीखती है। बिना चोट पहुँचाए वह प्रयोजन सिद्ध होता है, जो दाँत खट्टे कर देने की स्थिति में ही बन पड़ता है। शक्ति का प्रदर्शन भी शक्ति के प्रयोग को रोकता है। फटा बाँस फटकारते रहने पर भी जंगली जानवर भाग खड़े होते हैं। किसान खेतों में "काग-भगाऊ" दिखावा बनाकर खड़े कर देते हैं। उसे देखकर चिड़ियाएँ नहीं उतरतीं और लौमड़ी-खरगोश जैसे छोटे जानवर खेत में प्रवेश करने से कतराते हैं। व्यायामशालाओं में कसरत करने वालों और लाठी चलाना सीखने वालों को देखकर अनाचारियों की हिम्मत पस्त होती है। साहस का दिखावा भी बल प्रयोग जितना काम कर जाता है। नवयुवकों की व्यायामशाला और समर्थ नागरिकों का सेवादल जैसा संगठन बनना भी गुंडा तत्त्वों की रोकथाम का एक कारगर एवं सस्ता उपाय है। कनस्तर बजा करके छोटे लोमड़ी खरगोशों से ही नहीं बड़े हिरन, शूकरों से भी खेत की रक्षा कर ली जाती है। प्रसिद्ध है कि चोर के पैर नहीं होते, वह घर का बच्चा जग जाने और रोने-चिल्लाने की आवाज भर सुनकर भाग खड़ा होता है। यही बात उन अत्याचारियों के संबंध में भी लागू होती है जो कमजोर असंगठित वर्ग को ही आमतौर से अपना शिकार बनाते हैं। जहाँ उन्हें विश्वास होता है कि प्रतिरोध की आशंका नहीं है, वहीं वे अपना शिकंजा कसने का प्रयत्न करते हैं। जब उन्हें प्रतीत होता है कि यहाँ तो दाँत खट्टे कर देने वाली प्रतिरोधक शक्ति मौजूद है, वहाँ से वे सहज ही किनारा कर लेते हैं और अपनी जान बचाते हैं। इस तथ्य से सर्वसाधारण को विशेषतया उत्पीड़न ग्रस्तों

को बचाया जाना चाहिए। यदि इतना भर जनसाधारण को सिखा दिया जाए तो मनोबल बढ़ने भर से आधी मात्रा में गुंडागर्दी का समापन हो सकता है।

साँप जब तक अपनी आत्मरक्षा के लिए आवश्यक नहीं समझता, तब तक काटता नहीं। खतरे को अपने से दूर रखने के लिए वह गरदन उठाकर फुँसकारता ही रहता है। इस फुँसकार के पीछे यह तथ्य भी सम्मिलित रहता है कि वह जरूरत पड़ने पर काट भी सकता है। यदि यह सिद्ध हो जाए कि फूँसकार किसी बनावटी की है, बिना जहरीले साँप की है, तो फिर लोग चिढ़कर उसे और भी अधिक परेशान करने का प्रयत्न करते हैं। समझदारों को अत्याचारियों से बचने के लिए आवश्यक शक्ति भी एकत्रित करनी पड़ती है और साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि शक्ति के प्रदर्शन से काम चल जाए, उसका प्रयोग न करना पड़े तो अच्छा है। सतर्कता, सुरक्षा, व्यवस्था, संगठन और साहसिकता ऐसे तत्त्व हैं, जिनके सहारे अत्याचारियों के अतिक्रमण का खतरा बहुत कुछ कम हो जाता है। यों उन्हें समझाने-बुझाने का क्रम भी समाप्त नहीं करना चाहिए। मनुष्य मनःस्थिति और परिस्थिति बदलने पर अपने आचरण में परिवर्तन भी कर सकते हैं।

❐ ❐

बचिये नहीं निपटिये

संतजनों और उत्कृष्ट भावनाशीलों के लिए यही आदर्श उपयुक्त है कि अपराधियों को भूले-भटके माना जाए। उनके लिए भी करुणा और ममता सँजोए रखा जाए, किए हुए आक्रमणों से उत्पन्न आक्रोशों को भुला दिया जाए और क्षमाशीलता का परिचय दिया जाए। हृदय-परिवर्तन की आशा रखी जाए और अपने सद्व्यवहार से निष्ठुर जनों के पसीजने-पिघलने की आशा रखी जाए। संत-जन ऐसा करते भी रहे हैं, उनकी इस समता और करुणा को चरितार्थ किए जाने के अनेक उदाहरण भी मिलते हैं। पानी में बहते बिच्छू को एक संत ने हाथ पर रखकर बाहर निकाला, उसने डंक मार दिया और फिर पानी में बह चला, संत ने फिर निकाला। इसी प्रकार अंत तक वही उपक्रम चलता रहा।

यह नीति उच्चस्थिति पर पहुँचे हुए संतों के लिए उपयुक्त भी है। उनका आत्मबल बढ़ा-चढ़ा होता है इसलिए वे अपने प्रयोग की सफलता पर विश्वास भी रख सकते हैं, पर आवश्यक नहीं कि वह आशा सफल होती रहे। ईसा, मंसूर, सुकरात जैसे अनेकों उदारचेत्ताओं को इस प्रयोग में अपने प्राण गँवाने पड़े हैं। आक्रांताओं की पीछे भले ही निंदा होती रही हो, क्षमाशीलता को भले ही सराहा जाता रहा हो, पर तत्काल तो यही देखा गया कि क्षमाशीलता के प्रयोग प्रायः प्रत्यक्ष रोकथाम की दृष्टि से असफल ही रहते हैं। आक्रांताओं द्वारा संतों को सताया और उस पर गर्व जताया जाता रहा है, इससे उनका अहंकार बढ़ा है और दूसरों पर ऐसे ही आक्रमण करते रहने का दुस्साहस हुआ है। इस दृष्टि से सर्वसाधारण के लिए व्यावहारिक उपचार की दृष्टि से इसे अनुपयुक्त ही ठहराया जाता रहा है। जलती आग को बुझाया जाता

है, यदि उसे छूट दी जाती रहे तो छोटी चिनगारी दावानल का भयंकर रूप धारण कर सकती है और सर्वनाश के दृश्य उपस्थित कर सकती है। हिंसक-जंतुओं से निपटना ही पड़ता है और उन्हें भगाने का उपाय अपनाना पड़ता है। साँप, बिच्छू शिक्षा देने से कहाँ मानते हैं, उनसे बचना संभव न हो सके तो डंडे से निपटाना पड़ता है। जुएँ, खटमल, पिस्सू, जैसे कृमि-कीटकों से पीछा छुड़ाना भी अहिंसा व्रत धारण करके संभव नहीं हो सकता। पूजा-पाठ द्वारा शत्रु को भगा देने का प्रयोग आक्रमणकारियों को रोकने में सफल नहीं हो सका और सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर गजनवी के आक्रमण से धराशायी हो गया। यदि क्षमा ही सर्वत्र कारगर रही होती तो फिर सुरक्षा सेना की, पुलिस की, जेल-फाँसी आदि की आवश्यकता ही न पड़ती। अनाचारियों को किसी संत-सज्जन के सुपुर्द करके, उन्हें सुधार लिया जाता। क्षमा अपवाद हो सकती है। दया, अहिंसा का उपयोग संतों के लिए विशिष्ट आदर्श उपस्थिति करने की दृष्टि से उपयोगी हो सकता है, पर उसे लोक व्यवहार में निर्विवाद रूप से सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

आक्रमण होने से पूर्व अपनी स्थिति इस स्तर की बना लेनी चाहिए, जिसे देखते हुए हर कोई चढ़ दौड़ने की हिम्मत न करे। हमला करते हुए उसे सौ बार विचार करना पड़े कि इसमें घाटा भी उठाना पड़ सकता है और लेने के देने पड़े—यह भी आ सकता है। यदि इतना अनुभव कराया जा सके तो बहुत अंशों में आक्रमण की संभावना रुक सकती है। बहुत बार साँप को काटे बिना भी छेड़ने वालों को भगा देने में सफलता मिल जाती है, वह उठकर फुसकारता है और ऐसी मुद्रा बनाता है, जिससे छेड़ने वालों को जान बचाकर भागने के अतिरिक्त और कुछ करते-धरते न बन पड़े। ना समझ उद्धत जानवरों को पीट-पीटकर ही काबू में लाया जाए—यह आवश्यक नहीं। फटा बाँस जमीन पर फटकारते रहने पर भी घुड़की देने वाले बंदरों को आगे बढ़ने से रोका जा सकता है। खेत खाने

वाली चिड़ियों को कनस्तर बजाकर भी भगा दिया जाता है। माली अपने बगीचे के फलों की रखवाली इसी नीति को अपनाकर करते हैं। तोते-कौए मरते तो नहीं, पर इस प्रकार का माहौल देखकर वे भाग खड़े होते देखे गए हैं।

हर व्यक्ति अपने को ऐसा चुस्त-दुरुस्त रखे जिससे प्रतीत हो कि वह किसी भी आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार है। यह कार्य प्रायः एकाकी होने पर नहीं बन पड़ता, समूह में अपनी शक्ति होती है। मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे का साथ देने की क्षमता बनाए रहने पर आधी मुसीबत टल जाती है। आक्रामक अपना हाथ रोक लेते हैं और बढ़ते कदमों को पीछे हटा लेने पर विवश होते हैं। निजी हौसला बुलंद रखने के अतिरिक्त अपने जैसे ही साहसी लोगों का संगठन बना लेना चाहिए और उनके साथ-साथ रहने, साथ-साथ उठने-बैठने के अवसर बनाते रहने चाहिए। बर्रों के छत्ते में हाथ डालने में डर लगता है, पर यदि वह अकेली पास आ डटे तो उसका कचूमर निकालने के लिए कोई भी तैयार हो जाता है। मधुमक्खियों के छत्ते से आमतौर से लोग बचकर ही निकलते हैं। बंदर समूह में रहते हैं और एक को छेड़ने पर दूसरे भी उनकी सहायता के लिए इकट्ठे हो जाते हैं—इस कारण लोग बंदरों के झुंड को छेड़ते नहीं वरन् उससे बचकर ही निकलने में अपनी भलाई देखते हैं।

यह सोचना सही नहीं है कि दुरात्माओं से दोस्ती का प्रयत्न करने पर वे अपने को बख्स देंगे। उन्हें कुछ भेंट-उपहार देकर भी अनुग्रहीत नहीं किया जा सकता। सामान्य लोगों की अपेक्षा अनाचारी लोग अधिक धूर्त होते हैं, वे वस्तुस्थिति को समझने में चूक नहीं करते। दबकर खुशामद करने वालों को वे कमजोर मान बैठते हैं और उसी पर अधिक हमला करते हैं। भूत-प्रेतों का आतंक उन्हीं पर अधिक छाया रहता है, जो उनकी पूजा-पत्री आए दिन करते रहते हैं। जो उन पर विश्वास नहीं करते, साहस के बल पर उनसे निपट लेने का मनोबल रखते हैं उसका पाला

प्रायः उनसे नहीं ही पड़ता, इसलिए उनसे रिश्ता जोड़ने की अपेक्षा कतराते रहना ही अधिक लाभदायक रहता है। उनका समर्थन एवं सहयोग करने की बात सोचनी ही नहीं चाहिए, इससे दूसरों की भी हिम्मत टूटती है, दुरात्माओं का मनोबल बढ़ता है और अपने पक्ष वाले लोग हताश होते हैं—इसलिए दुर्जन की नीति तो अपनानी ही नहीं चाहिए। एकाकी होने पर भी अपनी हिम्मत सँजोए रहना चाहिए। यदि यह नीति अपनाई न गई होती तो किसान अपने दूर वाले खेतों पर अंधेरे-उजाले में काम करने कैसे जाते ? वनवासी-आदिवासी लोग जंगलों में छोटे-झोंपड़े बनाकर किस प्रकार जिंदगी काटते ? उन्हें तो जिंदगी खतरों के बीच ही गुजारनी पड़ती है, वे लाठी के बल पर ही खतरों की संभावनाओं से निपटते रहते हैं। कठिन संभावनाओं का सबसे बड़ा साथी-सहयोगी अपना मनोबल ही है। हिम्मत वालों का सहयोग देने के लिए दूसरे भी कितने ही तत्पर हो जाते हैं, जबकि कायरों का साथ देने के लिए, उनका समर्थन करने के लिए आमतौर से कोई तैयार नहीं होता। कहावत है कि 'जो अपनी सहायता आप करता है, उसी की दूसरे भी सहायता करते हैं, भगवान भी। जिसने हिम्मत हारी, समझना चाहिए कि वह हर मोर्च पर हार गया।

राजनीति में शाम, दाम, दंड, भेद के चारों प्रयोग अपनाए जाते हैं, उनमें से एक यह भी है कि अनाचारियों के गिरोह को छिन्न-भिन्न करने का, उनमें फूट डालने और उन्हें अलग-अलग रास्तों पर चल पड़ने के लिए किन्हीं माध्यमों को अपनाया जाए। ऐसे व्यक्ति आमतौर से निठल्ले होते हैं, यदि उन्हें किसी उपयोगी काम में लगा देने की संभावना बन सके तो उनका तथा दूसरों का सिरदर्द आधा हल्का हो जाता है। जिनके लिए इस प्रकार के दूरगामी परिणाम उत्पन्न कर सकने वाले उपक्रम बनाने संभव हो, उन्हें उस प्रकार की संभावनाएँ भी तलाश करनी चाहिए।

यों हर किसी में कुछ अच्छे गुण भी होते हैं, पर जिनमें दुर्गुण अधिक बढ़ जाते हैं, उन्हें बुरे लोगों में गिना जाने लगता है।

संगति से, वातावरण से गुण-दोषों का विकास-विस्तार होता है। प्रयत्न यह करना चाहिए कि जो कुमार्ग पर चल पड़े हैं, उन्हें भी कुसंग से किसी प्रकार छुटकारा मिले और वे अच्छी संगति अपनाएँ अच्छे वातावरण में रहने लगें। अपनी कार्यपद्धति में ऐसे उपक्रमों का समावेश करें, जो रचनात्मक, उत्पादक एवं उपयोगी हों। मात्र सलाह या शिक्षा देकर तो कदाचित ही किसी को सुधारा-सँभाला जा सकता है, पर यदि संगति, वातावरण और क्रिया-कलाप बदल सके तो ऐसी संभावना बढ़ सकती है, जिसमें विनाशकारी कृत्यों से विरत होकर किन्हीं उपयोगी कार्यों में समय, श्रम और बुद्धिबल को लगाना संभव हो सके—सुधार का एक यही उपयुक्त तरीका है।

उपेक्षा, असहयोग, विरोध और संघर्ष—इन चार उपायों से प्रतिपक्षियों का मुकाबला करने की जानी-मानी परंपरा है। अपनी स्थिति और सामने प्रस्तुत परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए जो उपयुक्त लगे, उसका उपयोग करना चाहिए। सतर्कता बरतना एक बात है। मनोबल तो हर हालात में टकराव की संभावना देखकर बनाए ही रहना चाहिए, साथ ही विरोधी का भय अपने मस्तिष्क पर हावी नहीं होने देना चाहिए—उपेक्षा इसी को कहते हैं। अपने स्तर का मूल्यांकन किया जाए, अपने को तुच्छ न माना जाए ताकि विरोधी का बढ़ा-चढ़ा और भयावह रूप अपने सिर पर सवार होने न लगे। हर आदमी को आए दिन कितनी ही समस्याएँ सुलझानी पड़ती हैं और कितने ही अवरोधों-टकरावों का सामना करना पड़ता है। ऐसी दशा में यदि कोई विरोधी आड़े आते हैं तो उनके लिए भी समय आने पर देखा जाएगा—ऐसी मान्यता बनानी चाहिए। भयभीत तो किसी भी स्थिति में नहीं होना चाहिए, इस प्रकार की उपेक्षा से भी प्रतिपक्षी का मनोबल टूटता है। उसकी हिम्मत तो तब बढ़ती है, जब अपने को उत्तेजित, असंतुलित, भयभीत या आतुर पाता है।

असहयोग दूसरा हथियार है, जिससे प्रतिपक्षी का मनोबल गिराया जाता है। सहयोग की सभी अपेक्षा करते हैं, यदि वह न मिले तो आक्रांता हतप्रभ रह जाता है। अनीति के आगे सिर झुकाने, डरने, घिघियाने या चापलूसी करने लगने से देखा गया है कि उद्दंड लोग अधिक दबाते चले जाते हैं और अधिक डराने, अधिक सताने का उपक्रम करते हैं। असहयोग से भी प्रतिपक्षियों की हिम्मत टूटती है और उनके कदम रुकते हैं। दुष्टता के हलके पड़ने जैसी संभावना भी रहती है।

विरोध मौखिक भी होता है और आक्रमण को असफल बनाने वाली रणनीति अपनाने के रूप में भी उसका प्रयोग होता है। विरोध में निंदा होती है, निंदा भी मनोबल गिराने का एक कारगर उपाय है। इससे भी अधिक कड़ा कदम संघर्ष है, प्रतिरोध इसी का नाम है। तनकर खड़े हो जाना, आक्रमणों को असफल बनाने वाले उपायों को कार्यान्वित करना संघर्ष है। यह अवसर के अनुरूप निर्धारण किया जाता है। प्रयत्न यह करना चाहिए कि मार-काट जैसे प्रत्याक्रमण की नौबत न आए, क्योंकि इससे आक्रमण-प्रत्याक्रमण का सिलसिला चल पड़ता है और फिर उस कुचक्र की एक शृंखला चल पड़ती है, जो मुद्दतों तक नहीं टूटती। इसमें आक्रमण से भी अधिक आहत होता है, इसलिए ऐसे प्रसंगों से यथासंभव बचना ही चाहिए। फिर भी आत्मरक्षा के लिए आक्रमणकारी का कड़ा मुकाबला करना हर व्यक्ति का कानूनी और नैतिक अधिकार है। इसे भी आतंक अम्ल के रूप में अपनाया जा सकता है, यदि अहिंसक प्रतिरोध का कोई उपाय बन पड़े तो और भी अधिक उपयुक्त है।

अनेक झंझटों में गलतफहमियाँ भी एक बड़ा कारण होती हैं। हो सकता है कि वे कल्पना-आशंका से उपजी हों या किन्हीं ने जान-बूझकर षड्यंत्र के रूप में उत्पन्न की हों। ऐसी स्थिति में वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने की साहसिकता अपनानी चाहिए और यथार्थता उजागर करनी चाहिए। इस माध्यम से भी बहुत से झंझट निपट जाते हैं।

अनीति के निराकरण में कानून भी सहायता करता है। पुलिस, अदालत इसी के लिए हैं—जहाँ यह माध्यम आवश्यक हो गया हो वहाँ कानून की शरण भी ली जा सकती है, पर उसमें पर्याप्त साक्षियाँ जुटाने, सबूत इकट्ठे करना आवश्यक होता है, जिन्हें आहत पक्ष प्रायः जुटा नहीं पाता। डरपोक लोग वस्तुस्थिति जानते हुए भी झंझट में न पड़ने के भय से सबूत में पेश होने से कतराते हैं। ऐसी दशा में पुलिस, कचहरी भी कुछ कर नहीं पाते। जहाँ लिखित सबूत हैं, मजबूत साक्षियाँ हैं, वहाँ तो कचहरी जाना भी किसी कदर कारगर होता है, पर उसमें भी लंबा समय लग जाता है और बहुत-सा समय तथा धन खर्च करने की आवश्यकता पड़ती है। कोई और चारा न हो तो यह मार्ग अपनाना ही उत्तम है। अच्छा यह है कि समाधान करा देने वाले माध्यम ही तलाश किए जाएँ, उन्हें न्यायोचित भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। प्राचीनकाल में पंचायतें भी कितने के ही झंझट निपटा दिया करती थीं। जहाँ अभी भी उसका अस्तित्व है, वहाँ उनका आश्रय भी लिया जा सकता है। अनीति को निरस्त करने के लिए धीमे या कड़े कदम तो उठाने ही चाहिए।

❑ ❑

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)